Chapter-2

द्वितीय अध्याय

' वर्मा जी के उपन्यासों का कालक्रमानुसार परिचय '

पिछले अध्याय में श्री भगवतीचरण वर्मा के जीवन और व्यक्तित्व पर समुचित प्रकाश डाला गया है तथा उनकी सभी रचनाओं की नामावलि भी प्रस्तुत की गयी है। हमें वर्मा जी के कथा-साहित्य के अध्ययन तक ही अपने को सीमित रखना है अतएव प्रस्तुत अध्याय में उनके उपन्यासों का परिचय देना अभीष्ट रहा है, कहानियों का विवेचन अन्यत्र किया जायेगा। वर्मा जी के उपन्यासों का अध्ययन उपन्यासों के प्रकाशन काल, कथावस्तु तथा उसमें प्रतिबिंबित मूलभूत विचारधारा को दृष्टि में रखकर किया जायेगा।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि वर्मा जी ने अपने साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ कवि के रूप में किया था। उस समय उनकी आयु मात्र 14 वर्ष की थी। उस अवस्था में उन्होंने कविताओं के साथ-साथ गद्य भी लिखा किन्तु प्रमुखता उन्होंने कविता ही को दी। कालान्तर में पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के निकट सम्पर्क में आने के फलस्वरूप उनमें कथा-साहित्य के प्रति अभिरुचि जाग्रत हुई।[1] उन्होंने सन् 1922-23 में 'हिन्दी-मनोरंजन' नामक पत्रिका में कुछ कहानियाँ लिखीं, किन्तु आज वह कहानियाँ सुलभ नहीं हैं। इसके पश्चात् कथा-साहित्य के क्षेत्र में वर्मा जी का अगला कदम 'पतन' नामक उपन्यास के लेखन के रूप में पढ़ा। 'पतन' वर्मा जी का प्रथम उपन्यास है, फलस्वरूप उसमें शिल्पगत अपरिपक्वता दृष्टिगत होती है। स्वयं वर्मा जी भी उसे साहित्यिक कृति का महत्व नहीं दे पाते।[2] कुछ लोग तो 'पतन' से इतने अपरिचित हैं कि वर्मा जी का प्रथम उपन्यास 'पतन' को न मानकर 'चित्रलेखा' को ही मानते हैं। इतना सब होने पर भी 'पतन' का महत्व कम नहीं हो जाता। यह वर्मा जी का प्रथम उपन्यास है जिसमें उनकी मूल-प्रवर्तिनी दृष्टि के बीज विद्यमान हैं। वर्मा जी की विचारधारा एवं जीवन-दर्शन के सूत्र उसमें किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिल जाते हैं।

<u>पतन</u> :- यह सन् 1928 ई० में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में अवध के अन्तिम शासक नवाब वाजिदअलीशाह के पतनोन्मुखी शासन की पृष्ठभूमि में तत्कालीन जन-जीवन का चित्रण करने का प्रबल प्रयास किया गया है। नवाब वाजिदअलीशाह का व्यक्तित्व इतना रोचक, आकर्षक एवं वैचित्र्यपूर्ण रहा है कि उससे प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य में अनेक उपन्यास लिखे गये, जिनमें इस विलासी, रंगीले और कलाप्रेमी नवाब के व्यक्तिगत जीवन एवं शासन-

---

1- वर्मा जी के (दिनांकहीन) पत्र के आधार पर।

2- 'पतन भी उसी तरह का प्रयोग-रूप में लिखा गया उपन्यास है----उसे मैंने कभी भी एक साहित्यिक कृति के रूप में महत्व नहीं दिया।'
- वर्मा जी के उपर्युक्त पत्र के आधार पर।

काल के प्रामाणिक, विश्वास्य एवं यथार्थ चित्र मिल जाते हैं। वर्मा जी ने नवाब वाजिदअली शाह के हरम और दरबार की झाँकी की पृष्ठभूमि में तत्कालीन जनजीवन को, 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्त पर, चित्रित करने का प्रयास किया है। एक समीक्षक ने आरोप लगाया है कि यह चित्रण दन्तकथाओं पर आधारित है और प्रामाणिक ऐतिहासिक तत्वों के अभाव के कारण शिथिल है।[1] जनश्रुतियाँ सदैव असत्य एवं अप्रामाणिक होती हैं - यह मान बैठना उचित नहीं, क्योंकि कभी-कभी पक्षपातपूर्ण इतिहास की अपेक्षा जनश्रुतियाँ अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती हैं। फिर वाजिदअली शाह का शासन काल अभी अधिक सुदूर इतिहास की बात नहीं, अत: उसके सम्बंध में जनश्रुतियों में ऐतिहासिकता के क्षय का विशेष भय नहीं। अत: किंवदंतियों पर आधारित नवाब की कथा विश्वास्य तो है, किन्तु उसे परिपक्व रचना-कौशल से उपन्यासकार प्रस्तुत नहीं कर सका है।

यों तो उपन्यास का प्रारम्भ उपक्रमणिका, जिसमें रणवीर, प्रतापसिंह और प्रकाशचन्द्र के माध्यम से कथा के सभी प्रमुख सूत्रों का संकेत दे दिया गया है, के द्वारा हुआ है, किन्तु उपन्यास के प्रथम परिच्छेद का प्रारम्भ नवाब वाजिदअली शाह के दरबार से होता है। नाच-रंग और वैभव-विलास में डूबे रहनेवाले नवाब उस दिन अपने दरबार में पहुँचते हैं तो राजा श्यामसिंह इस बात की ओर उनका ध्यान खींचना चाहते हैं कि सल्तनत की दशा बहुत खराब है और उनके राज्य के कर्मचारी ही उनकी जड़ें हिलाने में लगे हैं, किन्तु सहृदय नवाब अपने मुसाहिबों को नौकरी से नहीं निकाल पाते। वह कहते हैं - 'मैं नहीं समझता कि एक इंसान कभी नमक का हक बुरी तरह अदा कर सकता है। रोज मैं रोते और बिलखते हुए लोगों की आवाजें सुनता हूँ, लेकिन हिम्मत नहीं होती कि उन लोगों की बातें सुनूँ। मुझे यकीन नहीं होता कि इंसान की इतनी बुरी हालत हो सकती है। मैं कभी ख्याल नहीं कर सकता [illegible] कि इंसान इतना संगदिल हो सकता है कि वह इंसान पर ही इतनी ज्यादतियाँ करे। इसीलिए राजा साहब! मैं अपने मुसाहिबों को अलग नहीं कर सकता। काश, मैं आज उन्हें अलग कर दूँ, तो वे भूखों मर जायेंगे। मैंने उनको नाकाम बना दिया है। उनके तड़पते हुए बच्चों की आहें मुझको जला देंगी।'[2]

1- उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा - डॉ० ब्रजनारायण सिंह - पृ० 19

2- पतन- पृ० 3[illegible]

नवाब सब कुछ जानते हुए भी अपनी ऐशो-आराम की आदत के इतने गुलाम हो गये हैं कि उससे निकलने का कोई यत्न भी नहीं करते। ऐसे वातावरण में ही उपन्यास का प्रमुख पात्र प्रतापसिंह एक ज्योतिषी के रूप में दरबार में पहुँच जाता है। अपनी आँखों से घूरकर देखने पर सामने वाले को सम्मोहित करने की दैवी शक्ति से समन्वित प्रतापसिंह, नवाब को शराब के गिलास में उनका भविष्य दिखलाकर बता देता है कि उनके राज्य की जड़ें खोदनेवालों में प्रमुख हैं उनके वजीर अली नकी खाँ।

यह राज़ खुल जाने पर वजीर और अन्य कर्मचारी प्रतापसिंह से चिढ़ जाते हैं और धोखे से उसे जेल में बंद कर देते हैं। प्रतापसिंह (जिसने दरबार में अपना परिचय राधारमण के नाम से दिया था) का परिचय वहाँ गुलनार से होता है और इस प्रकार नवाब वाजिदअली शाह से प्रारंभ होनेवाली ऐतिहासिक परिवेश सम्बंधी कथा आगे बढ़ती है। मुहम्मद याकूब वजीर अलीनकी का एक विश्वासपात्र कर्मचारी है, उसी की पुत्री गुलनार है। गुलनार प्रताप-सिंह की दैवी शक्ति से अभिभूत होकर उससे प्रेम करने लगती है। बन्देहसन, जो गुलनार का सम्बंधी, प्रेमी और नौकर सभी कुछ है, गुलनार के प्रेम में अन्धा होकर मुहम्मद याकूब की इच्छा के विरुद्ध राधारमण (प्रतापसिंह) को मुक्त कर देता है और राधारमण व गुलनार वहाँ से भाग खड़े होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मुहम्मद याकूब क्रोध से पागल होने लगता है और बन्देहसन अपनी प्रेमिका को लेकर भागनेवाले राधारमण के खून का प्यासा होकर उसकी तलाश करने लगता है। अन्त में मुहम्मद याकूब राधारमण के हाथों मारा जाता है और गुलनार अपने पिता की कटार से घायल होकर मर जाती है। गुलनार के शव को लेकर बन्देहसन भी गोमती में डूबकर आत्महत्या कर लेता है।

'पतन' की मुख्य कथा प्रतापसिंह, रणधीरसिंह और सुभद्रा से सम्बंधित है। रण-धीरसिंह प्रतापसिंह का पोष्य पुत्र है। प्रतापसिंह अत्यंत विलासी व्यक्ति है, इसीलिए रणधीर को पुत्रवत् मानते हुए भी उसकी प्रेमिका सुभद्रा को अपनी कुत्सित दृष्टि का शिकार बनाता है। सुभद्रा को अधिक समय तक रूपवती, मदिर एवं सम्पन्न बनाए रखने के लिए वह षड्यंत्रपूर्वक सुभद्रा को नवाब की बेगम बनवा देता है। एक दिन अपने प्रेम से निराश रणवीर की अचानक सुभद्रा से उसके महल में भेंट हो जाती है और प्रतापसिंह की असलियत जानकर वह प्रतापसिंह पर आक्रमण कर बैठता है, किन्तु प्रतापसिंह अपनी दैवी शक्ति का उपयोग कर बच जाता है। कुछ समय पश्चात् रणवीर नवाब की एक अन्य बेगम सितमआरा कीसहायता से सुभद्रा को नवाब के हरम से निकालने में सफल होता है। रणवीर सुभद्रा को लेकर कानपुर

की ओर रवाना होता है । जब प्रतापसिंह को सुभद्रा के गायब होने की सूचना मिलती है तो उसे रणवीर पर ही संदेह होता है और वह उसका पीछा करता है । गंगा की धारा के मध्य प्रतापसिंह और रणवीर का संघर्ष होता है और प्रतापसिंह अपनी अमानुषिक शक्ति के सहारे नाव पलट देता है । परिणामस्वरूप तीनों को जल समाधि लेनी पड़ती है । पिता-पुत्र का सम्बंध माननेवालों का एक स्त्री के लिए संघर्ष करना और मर जाना पतन की सीमा का द्योतन करता है ।

इस मुख्य कथा की सहायक बनकर आयी है प्रकाशचन्द्र, भवानीशंकर और सरस्वती की कथा । प्रकाशचन्द्र एक पुरुषत्वविहीन युवक है । वह दैवी शक्ति के माध्यम से शक्ति पाने के लिए प्रतापसिंह का शिष्यत्व ग्रहण करता है और गुरु-दक्षिणा के रूप में अपनी पत्नी को विलासी प्रतापसिंह के हाथों सौंप देता है । प्रकाशचन्द्र की पत्नी सरस्वती अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रतापसिंह की वासना की पूर्ति तो करती है, किन्तु अपने पति की अकर्मण्यता और उदासीनता से ऊबकर उसके मित्र भवानीशंकर से प्रेम करने लगती है । भवानीशंकर सरस्वती के आग्रह पर अपनी पत्नी उर्मिला की निष्ठा की अवहेलना कर सरस्वती को लेकर कानपुर पहुँचता है । उधर उर्मिला अपनी सास और मुंशी रामसहाय(भवानीशंकर के चाचा) के साथ भवानीशंकर का पीछा करते हुए कानपुर पहुँचती है । भवानीशंकर, जब वह गंगा पार करके शहर जा रहा था, किनारे पर अपनी पत्नी को देखकर, अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हो उठता है और उसी समय सरस्वती की असावधानी से नाव पलट जाती है और सरस्वती गंगा में डूब जाती है ।

उपर्युक्त तीनों प्रेम-त्रिकोण एवं सितमआरा की प्रणय-कथा के माध्यम से वर्मा जी ने वाजिदअलीशाह के युग के रोमानी वातावरण को प्रस्तुत करने का यत्न किया है ।सरस्वती से सम्बंधित प्रसंग अधिक मार्मिक बन पड़े हैं क्योंकि उसमें पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया गया है । अन्य कथाएँ उचित संतुलन के अभाव में अतिरंजित एवं अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं। वाजिदअली शाह से सम्बंधित दंतकथाओं, यथा- नवाब द्वारा कुचलकर फेंके गये पान को खाकर एक मेहतर का पागल हो जाना, वृद्धा द्वारा कढ़ाई-करछुल की तौल का सोना प्राप्त करना, शहजादे के मोतियों को छूने पर जौहरी की नसीहत और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप नवाब द्वारा बहुमूल्य आभूषण को कुचलकर गोमती में फिंकवा देना आदि, का उचित उपयोग नहीं किया गया है । इसी प्रकार वाजिदअलीशाह के राज्य का पतन, अंग्रेजों

द्वारा उनके राज्य को हड़पने और सुभद्रा के हरम से गायब होने के समय नवाब की स्थिति की घटनाएँ विशुद्ध कथावाचक शैली में कही गयी है, अत: अपना समुचित प्रभाव नहीं डाल पातीं ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'पतन' में वर्मा जी की मूल जीवन-दृष्टि का बीजारोपण हो गया था । इस उपन्यास में वर्मा जी ने अपने विचारक एवं तार्किक रूप को बहुत-कुछ प्रकट कर दिया है, जिसका संशोधित एवं परिष्कृत रूप 'चित्रलेखा' में देखने को मिलता है । इस उपन्यास में प्रेम और तृष्णा, प्रेम और घृणा, पाप और पुण्य, यौवन और उल्लास, व्यभिचार, विश्वास और कर्तव्य तथा अन्तरात्मा, ईश्वर,धर्म और पुनर्जन्म, शकुन विवाह एवं नियतिवाद सम्बंधी विचारों को विस्तार से प्रकट किया गया है ।

सबका विवेचन करना यहाँ असंभव है और संभवत: उनसे अनावश्यक विस्तार ही होगा । कुछ महत्वपूर्ण विचारों को देना ही यहाँ समीचीन प्रतीत होता है, जिनका विकास वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में हुआ है और जिनसे उनका जीवन-दर्शन निर्मित हुआ है । प्रेम और तृष्णा दोनों का सम्बंध 'पसंद करने' से है किन्तु दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है । प्रेम को सद्वृत्ति एवं तृष्णा को असद्वृत्ति के रूप में देखते हुए प्रतापसिंह ~~कह~~ कहता है - 'प्रेम अमृत है । प्रेम सांसारिक नहीं है, वह दैवी होता है । --- प्रेम में गंभीरता है । तृष्णा मनुष्य को पागल बना देती है । प्रेम मानसरोवर की भाँति शांत है, तृष्णा सागर की उतावली लहरों की भाँति उच्छृंखल है । प्रेम में सदा स्थिरता रहती है, वह सदा एक-सा रहता है, तृष्णा परिवर्तनशील है ।'[1] प्रेम और तृष्णा दोनों मनुष्य में विद्यमान हैं । एक भाव के शैथिल्य पर दूसरा तीव्र हो उठता है । सरस्वती को जब प्रेम नहीं मिलता, तो वह तृष्णा की अनुचरी हो जाती है ।

'पाप और पुण्य' की समस्या वर्मा जी की दृष्टि में व्यक्ति और परिस्थितियों पर निर्भर करती है । एक सम्पन्न व्यक्ति के लिए भोग-विलास मामूली-सी बात है । किन्तु एक गरीब व्यक्ति के लिए वही व्यभिचार और पाप बन जाता है । प्रतापसिंह की दृष्टि में व्यभिचार पाप नहीं था, किन्तु वह जिन साधनों से व्यभिचार कर रहा था, वे पाप-पूर्ण थे । व्यभिचार के लिए उसने हत्या की थी और इसे उसकी अंतरात्मा पाप कहती थी ।

1- पतन- पृ० 16-17

पाप-पुण्य का सम्बंध अन्तरात्मा एवं सामाजिक नियमों से भी है। पाप और पुण्य की संख्या किसी ग्रंथ में ईश्वर ने नहीं लिख दी है, समाज ही उनका निर्णय करता है -"कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें प्रत्येक समाज पाप समझता है, और उन्हीं बातों पर सब मनुष्यों की अंतरात्माएँ सहमत हैं। चोरी करना पाप है; क्योंकि यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति चोरी करने लगे, तो समाज में ऐसी गड़बड़ मचेगी कि समाज की उसी दिन समाप्ति हो जायगी। बालक-समाज प्रत्येक मनुष्य से यही सुनता है कि चोरी करना पाप है। उसके हृदय पर इसका प्रभाव पड़ता है, और उसकी अंतरात्मा बन जाती है। बाद में जब वह चोरी करने पर उद्यत होता है, उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कारती है।"[1] इसी समाज और अंतरात्मा से पाप-पुण्य को जोड़ने के कारण रणवीर हत्या करके भी स्वयं को पापी नहीं मानता और न उसे जाननेवाले ही उसे पापी मानते थे। रणवीर के विषय में उपन्यासकार कहता है -"संसार की दृष्टि में वह पापी था, पर उस पापी मनुष्य की दृष्टि में वह धर्मात्मा था। उस पापी मनुष्य के कुछ थोड़े-से सिद्धान्त थे। समाज की दृष्टि में वह हत्यारा था, पर अपनी समझ में उसने संसार का बड़ा भला किया था।"[2] रणवीर गरीबों को सुखी बनाने के लिए अमीरों की हत्या करता था, किन्तु हत्या करने के बाद उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे और उसका बदन काँपने लगता था। उसका रोना और काँपना ही उसके शुद्ध और उदार हृदय के द्योतक थे। "उसे जाननेवाले मनुष्य उससे घृणा न करते थे, पर उससे अधिक मिलते भी न थे। --- लोगों में वह डाकू के नाम से प्रसिद्ध था, पर गरीबों में वह अन्नदाता पुकारा जाता था।"[3] इस प्रकार वर्मा जी ने पाप-पुण्य की समस्या का सम्बंध व्यक्ति और समाज-दोनों से बड़ी चातुर्य-पूर्ण ढंग से जोड़ दिया है। उनकी इसी समन्वित दृष्टि का विकास उनके अन्य उपन्यासों में हुआ है।

इसी प्रकार 'नियति' के प्रति वर्मा जी की आस्था 'पतन' से ही झलकने लगती है। वर्मा जी की धारणा है मनुष्य स्वयं कुछ नहीं करता, वह तो नियति के आधीन है। मनुष्य किसी अदृष्ट शक्ति के द्वारा किए गए पूर्वनिश्चित पथ पर चलनेवाला पथिक है। वर्मा जी की नियति-विषयक धारणा 'पतन' में मुख्यत: वाजिदअली शाह के कथनों के द्वारा

1- पतन- पृ० 147

2- वही- पृ० 55

3- वही- पृ० 56

प्रकट हुई है। वाजिदअली शाह कहते हैं -" ऊपर खुदा है, उसकी मर्जी हमेशा पूरी होगी, फिर मैं यह सब क्यों करूँ। वह जो कुछ करना चाहता है, वह टल नहीं सकता। फिर मैं यह सब क्यों करूँ।"[1]

सुभद्रा के प्रसंग को लेकर 'विवाह' संस्था पर भी वर्मा जी ने अपने विचार प्रतापसिंह के माध्यम से प्रकट करवाए हैं। सदैव नयी वस्तु की खोज में रहनेवाला मनुष्य विवाह के पश्चात् ऊबने लगता है, इसलिए विवाह का बंधन अरुचिकर लग सकता है किन्तु विवाह समाज की व्यवस्था के लिए आवश्यक है -"विवाह करने के बाद उसकी इच्छा-तृप्ति हो जाती है। फिर वह आगे बढ़ता है, समझे। दूसरी स्त्री में जो आकर्षण है, वह अपनी स्त्री में इसीलिए नहीं होता। विवाह-बंधन दैवी नहीं है। उसका निर्माण समाज ने किया है। उसका एकमात्र लक्ष्य व तृष्णा को वशीभूत करने का है। पर एक चीज़ जो प्राकृतिक है, उसका नाश नहीं हो सकता। फिर भी विवाह-बंधन बड़े काम का है। शायद वह आवश्यक है, क्योंकि वह समाज को जीवित रखे हैं।"[2]

वर्मा जी के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होजाता है कि 'पतन'-लेखन की अवस्था तक लेखक की मनोवृत्ति समाज से अधिक जुड़ी थी, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की स्थापना की आकांक्षा तो उसमें थी, किन्तु समाज का सबल विरोध करने का साहस वह तब तक नहीं जुटा पाया था। इसके उपरान्त भी यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी की मूलभूत विचारधारा का प्रादुर्भाव अवश्य हो गया था।

<u>चित्रलेखा :-</u> 'चित्रलेखा' का प्रकाशन 'पतन' के 7 वर्ष पश्चात् हुआ। इस बीच वर्मा जी ने स्वाध्याय एवं मौलिक प्रतिभा के सहयोग से अपनी अभिव्यंजना-कला का पर्याप्त विकास कर लिया और उसके प्रतिफलन से 'चित्रलेखा' की सृष्टि हुई। परिणामस्वरूप 'चित्रलेखा' ने हिन्दी साहित्य के विज्ञ पाठकों एवं आलोचकों को अपनी ओर आकर्षित होने के लिए विवश कर दिया। पिछले अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि वर्मा जी ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ कवि के रूप में किया था और उन्हें उस रूप में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई थी, तदुपरांत उन्होंने 'पतन' के द्वारा उपन्यास-लेखन का प्रयोग किया।

1- पतन- पृ० 35

2- वही- पृ० 17

इसमें उन्हें अधिक सफलता तो नहीं मिली, किन्तु उनमें विश्वास अवश्य जमा कि वह उपन्यास लिख सकते हैं। 'चित्रलेखा' की कल्पनातीत प्रसिद्धि एवं सफलता ने उनके विश्वास को दृढ़तर बनाया और इसके बाद तो वर्मा जी ने कथा-साहित्य को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बना लिया। चित्रलेखा में वर्मा जी के कवि एवं कथाकार-दोनों रूपों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

'चित्रलेखा' और 'थाया' :- वर्मा जी ने 'चित्रलेखा' की भूमिका में अनातोल फ्रांस की 'ताइस' की चर्चा करके एक बहुत बड़े विवाद को जन्म दे दिया। उन्होंने लिखा-"मेरी चित्रलेखा और अनातोल फ्रांस की ताइस में इतना अंतर है जितना मुझमें और अनातोल फ्रांस में। चित्रलेखा में मेरा अपना दृष्टिकोण है, मेरी निजी भावना है और मेरे जीवन का संगीत है।"[1] संभवत: इस स्वीकारोक्ति का भ्रांतिपूर्ण अर्थ निकालकर ही लोगों ने 'चित्रलेखा' को 'ताइस' का अनुवाद घोषित कर दिया, किन्तु आज यह विवाद पूर्णरूपेण सुलझ चुका है और यह स्वीकार किया जा चुका है कि 'चित्रलेखा' सभी तत्वों पर 'ताइस' से प्रभाव ग्रहण करके भी नितांत भिन्न है और उसमें वर्मा जी की मौलिक प्रतिभा का महत्वपूर्ण योगदान है।[2] वरन् एक लेखक ने तो 'चित्रलेखा' को 'ताइस' की अपेक्षा श्रेष्ठ कृति के रूप में देखा है।[3] डा० अग्रवाल ने उपन्यास के सभी तत्वों के आधार पर 'चित्रलेखा' और 'ताइस' की विस्तृत तुलनात्मक विवेचना की है। अत: हम यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करना समीचीन नहीं समझते।

1- चित्रलेखा की भूमिका से उद्धृत।

2- "अनातोल फ्रांस से प्रेरणा, कथानक, पात्र, संवाद, परिवेश और भाषा--सभी तत्वों पर प्रभाव ग्रहण करके भी वर्मा जी की 'चित्रलेखा', 'ताइस' से नितांत भिन्न एक मौलिक कृति की प्रतिष्ठा पा सकी। इन तत्वों का जो संयोजन वर्मा जी ने किया है वह नितांत उनका अपना है और इसीलिए उसका समग्र प्रभाव 'ताइस' से अत्यंत भिन्न होता है।"
- हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव- डा० भारतभूषण अग्रवाल, पृ० 460

3- "यशपाल ने मुझे बताया कि 'चित्रलेखा' अनातोल फ्रांस के उपन्यास 'ताइस' का चरबा है। उन्होंने मुझे 'ताइस' भी पढ़ने को दिया। पढ़कर 'चित्रलेखा' का महत्व मेरी नजरों में और भी बढ़ गया। क्योंकि आधारभूत विचार में चाहे थोड़ी-बहुत समानता हो, जिसे भगवतीबाबू ने भूमिका में मान भी लिया है, लेकिन दोनों उपन्यासों में बड़ा भारी अन्तर है, और मुझे 'चित्रलेखा' 'ताइस' से बेहतर लगा।"
- 'परतों के आर-पार' : उपेन्द्रनाथ अश्क : पृ० 58 (हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव- पृ० 460)

चित्रलेखा - उपन्यासका प्रकार :- 'चित्रलेखा' उपन्यास में सोद्देश्यता, चरित्र, ऐतिहासिकता, रोमानी वातावरण एवं समस्या का ऐसा समन्वय हुआ है कि सभी अपनी-अपनी जगह महत्वपूर्ण लगते हैं। इसी कारण विभिन्न विद्वानों ने उसे उपन्यास की विभिन्न कोटियों में रखा है। वर्मा जी ने स्वयं 'चित्रलेखा' की भूमिका में 'समस्या' और 'दृष्टिकोण' की चर्चा करते हुए उसे 'चरित्राधारित' उपन्यास माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,[1] डॉ० शंकरदेव अवतरे,[2] रामप्रकाश कपूर[3] और डॉ० प्रभाकर माचवे[4] ने 'चित्रलेखा' को समस्या-प्रधान उपन्यास माना है। कुछ समीक्षकों ने 'चित्रलेखा' की सोद्देश्यता की चर्चा करते हुए उसे चरित्र-प्रधान उपन्यास के रूप में स्वीकार किया है।[5] इनके अतिरिक्त डॉ० सुषमा धवन[6] एवं डॉ० कमलकुमारी चौधरी[7] ने क्रमश: इसमें व्यक्तिवादी एवं स्वच्छंदतावादी उपन्यास की प्रवृत्तियों का संधान किया है। किन्तु विशेष ध्यातव्य यही है कि इसकी सोद्देश्यता को सबने स्वीकार किया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने समस्या उपन्यास(Problem novel) को सामाजिक उपन्यासों के प्रकार० एक प्रकार के रूप में स्वीकार किया है।[8] किन्तु डॉ० शंकरदेव अवतरे ने समस्याकृति में सोद्देश्यता के साथ कुछ अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसे एक मौलिक प्रयोग की गरिमा दी है -'समस्याकृतियों में बुद्धितत्व की प्रधानता है क्योंकि यहाँ समस्या बौद्धिक आधार पर उठाई जाती है और उनका समाधान भी बौद्धिक होता है। किन्तु समस्या और समाधान को उपस्थित करने के लिए जैसा प्रभावशाली वातावरण तैयार किया जाता है वह हृदय की संवेदना के कम सहयोग से किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता।----- समस्या प्रधान कृति में कोई एक ही समस्या प्रधान होती है, अन्य छोटे-मोटे प्रश्न केवल देश-काल की अभिव्यक्ति होते हैं।'[9] समस्याकृति की उपर्युक्त विशेषताओं की कसौटी पर

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 536-37
2- हिन्दी साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग - डॉ० शंकरदेव अवतरे, पृ० 165
3- हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास- रामप्रकाश कपूर, पृ० 85
4- संतुलन- डा० प्रभाकर माचवे, पृ० 170
5- हिन्दी उपन्यास - डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 230-31
6- हिन्दी उपन्यास- डॉ० सुषमा धवन, पृ० 95
7- हिन्दी के स्वच्छंदतावादी उपन्यास- डॉ० कमलकुमारी चौधरी, पृ० 455
8- Dictionary of World Literature - Joseph & Shipley, P. 286
9- हिन्दी साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग- डॉ० शंकरदेव अवतरे- पृ० 165-109

'चित्रलेखा' का परीक्षण यदि किया जाय तो वह निश्चित रूप से समस्याकृति ही ठहरेगी । 'चित्रलेखा' का प्रारम्भ ' और पाप !' के रूप में एक विद्याव्यसनी शिष्य द्वारा समस्या उठाकर ही किया गया है और अंत गुरु के समाधान से हुआ है । प्रश्न और समाधान दोनों बौद्धिक धरातल पर ही किए गये हैं । समस्या का समाधान खोजने के लिए गुरु महाप्रभु रत्नाम्बर अपने शिष्यों को संसार के पृथक्-पृथक क्षेत्रों का अनुभव लेने भेजते हैं । इस प्रकार उपन्यास की मूल समस्या- 'पाप-पुण्य' के लिए समुचित वातावरण भी उपस्थित हो जाता है और समस्या से उपन्यास की कथा का सम्बंध भी जुड़ जाता है । 'चित्रलेखा' की मनोवैज्ञानिक एवं रोमांटिक कथा में हृदय की सम्पूर्ण संवेदना का सहयोग हुआ है । इस उपन्यास में पाप-पुण्य के अतिरिक्त प्रेम, विवाह, नियति, परिस्थिति एवं ईश्वर और धर्म आदि प्रश्नों का भी प्रासंगिक रूप से समावेश हो गया है । पाप-पुण्य, प्रेम और विवाह तथा प्रेम और वासना की परम्परागत परिभाषाओं से अलग हटकर, उन्हें नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने के विशिष्ट उद्देश्य से इस उपन्यास का सृजन हुआ है अत: इसकी सोद्देश्यता स्वत: प्रमाणित है । निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि उपन्यासकार ने चरित्र, कथा, ऐतिहासिक वातावरण एवं अभिनयात्मकता सभी तत्वों का ऐसा कलात्मक संयोजन किया है कि सबका पृथक-पृथक सौन्दर्य एवं महत्व है किन्तु पाप-पुण्य की समस्या को जिस ढंग से इस उपन्यास में रखा गया है - उस दृष्टि से इसे समस्या -प्रधान उपन्यास कहना ही उपयुक्त होता है ।

'चित्रलेखा की ऐतिहासिकता :- 'चित्रलेखा ' का ऐतिहासिक वातावरण 'चित्रलेखा' के ऐतिहासिक उपन्यास होने का भ्रम अवश्य उत्पन्न करता है और सामान्य पाठक को ऐतिहासिक उपन्यास का आनन्द भी प्रदान कर सकता है, किन्तु उसे ऐतिहासिक उपन्यास

(शेष अगले पृष्ठ पर)

कहना तर्कसंगत नहीं। अधिकांश समीक्षकों[1] ने चित्रलेखा के ऐतिहासिक वातावरण की प्रशंसा की है किन्तु उसे ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में किसी ने नहीं रखा है। मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है -"प्राचीन समय के नामों से कोई पुस्तक ऐतिहासिक नहीं होती। पुराने शिलालेख और ताम्र-पत्र भी इतिहास नहीं है। इतिहास है किसी समय की भाषा और विचार को व्यक्त करना।"[2] इस दृष्टि से विचार करने पर भी 'चित्रलेखा' ऐतिहासिक उपन्यास नहीं ठहरता, क्योंकि इसमें चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य- दो ऐतिहासिक पुरुषों के नाम तो हैं परन्तु वे उपन्यास के प्रमुख पात्र नहीं। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है वर्मा जी ने इस उपन्यास में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग तो किया है, किन्तु इसमें भी वे कहीं-कहीं कुछ चूक गये हैं। इस सम्बंध की चर्चा अन्यत्र विस्तार से की जायगी। इस उपन्यास के विचार तो पर्याप्त नवीन हैं और तत्कालीन युग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व तो किसी रूप में नहीं करते। वरन् ऐतिहासिक होने का भ्रम उत्पन्न करनेवाले पात्रों के मुख से वर्तमान युग के बदलते जीवन-मूल्यों का प्रकाशन 'चित्रलेखा' के द्वारा हुआ है। अतः 'चित्रलेखा' ऐतिहासिक उपन्यास कदापि नहीं, ~~केवल~~ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण उसके ऐतिहासिक उपन्यास होने का आभास अवश्य होता है और ऐतिहासिक उपन्यास-जैसा प्रभाव भी पड़ता है।

1- (क) 'चित्रलेखा में चन्द्रगुप्त मौर्य का भारत हमारी आँखों के सामने घूम जाता है।'
- नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि- पृ० 174

(ख) 'चित्रलेखा' उपन्यास के माध्यम से लेखक हमें अतीत भारतवर्ष की एक झाँकी दे देता है।' - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद-डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० 387

(ग) 'विराटा की पद्मिनी' की भाँति 'चित्रलेखा' की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक है यद्यपि कहानी बिल्कुल कल्पित है --- जहाँ तक समसामयिक वातावरण का सम्बंध है, वर्मा जी पूर्ण सफल रहे हैं। नागरिकों की वेशभूषा, उनका रहन-सहन, उनकी बातचीत, गुप्त राज्य-सभा की, मर्यादा आदि के चित्रण में बड़ी सतर्कता से काम लिया गया है।'-
- हिन्दी उपन्यास- डा० शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 233-34

(घ) 'भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण की अपेक्षा तत्कालीन जीवन का आभास मिलता है --यह शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास ~~xxxxxxxx~~ न होते हुए भी अपने काल के सांस्कृतिक वातावरण की झाँकी स्पष्टतः देता है।'
- हिन्दी गद्य के विविध साहित्य-रूपों का उद्भव और विकास-डा० बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे, पृ० 204

(च) 'विराटा की पद्मिनी' में इतिहास है ही नहीं, केवल वातावरण से ऐतिहासिक का आभास मिलता है। ऐसे उपन्यास को कहाँ तक ऐतिहासिक माना जाय, यह एक समस्या है। ऐसे तो भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' भी ऐतिहासिक वातावरण लेकर लिखा गया है।
-आलोचना' - संख्या 13, पृ० 182

2- अहंकार (अनातोल फ्रांस की ताईस का हिन्दी अनुवाद) की भूमिका से उद्धृत।

कथावस्तु :- जैसा कि पहले कहा जा चुका है कथानक का प्रारम्भ महाप्रभु रत्नाम्बर के शिष्य श्वेतांक की जिज्ञासा 'और पाप ?' के द्वारा होता है। गुरु अपने शिष्यों की जिज्ञासा का उत्तर उपदेश द्वारा नहीं देते, वरन् इस जिज्ञासा के शमन हेतु उन्हें संसार-सागर में तिरकर उसके समाधान का मोती ढूँढ़कर लाने के लिए मुक्त कर देते हैं। शिष्यों के अनुभव क्षेत्र का निर्धारण भी वे स्वयं कर देते हैं। श्वेतांक क्षत्रिय है इसलिए उसे एक समृद्ध एवं युवा सामंत बीजगुप्त के सान्निध्य में छोड़ देते हैं और विशालदेव, जो ब्राह्मण है, को योगी कुमारगिरि के पास ले जाते हैं और स्वयं साधना में लीन हो जाते हैं। एक वर्ष उपरान्त अपने शिष्यों के अनुभव के आधार पर वह श्वेतांक की जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत करते हैं।

दो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जन्मे बीजगुप्त और कुमारगिरि क्रमश: 'भोगी' और 'योगी' के रूप में प्रसिद्ध हैं। बीजगुप्त एक शक्ति सम्पन्न और वैभव-विलास में सुख का अनुभव करनेवाला सामंत है और कुमारगिरि ऐसा नवयुवक योगी है, जिसका दावा है कि उसने समस्त वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है और लोगों का विश्वास है कि उसने ममत्व को वश में कर लिया है। उपर्युक्त समस्या के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करने के लिए चित्रलेखा क्रमश: इन दोनों के जीवन में आती है और इन दोनों व्यक्तियों की मनोवृत्तियों के प्रकाशन का साधन बनती है।

चित्रलेखा को अठारह वर्ष की कच्ची अवस्था में वैधव्य का दुख झेलने के लिए विवश होना पड़ा था, किन्तु यौवन के आवेग के कारण वह शीघ्र ही कृष्णादित्य नामक युवक के प्रति आसक्त हो गयी। उसके संसर्ग से गर्भवती हो गयी। दोनों जीवन-भर साथ रहने के लिए वचनबद्ध थे और इच्छुक भी किन्तु समाज को यह स्वीकार नहीं हुआ। दोनों को समाज की तीव्र भर्त्सना और बहिष्कार का भाजन बनना पड़ा। कृष्णादित्य यह अपमान न सह सका और उसने आत्महत्या कर ली। पहली बार ईश्वर द्वारा दंडित चित्रलेखा इस बार समाज के अत्याचार की शिकार बनी। कृष्णादित्य की मृत्यु के पश्चात् वह कृष्णादित्य के पुत्र को जन्म देती है किन्तु वह भी जन्म लेते ही उसका साथ छोड़ जाता है। चित्रलेखा अपने दुर्भाग्य से जूझती हुई एक नर्तकी का आश्रय प्राप्त करती है और नृत्य की शिक्षा लेकर पाटलिपुत्र की सर्वाधिक प्रसिद्ध नर्तकी बन जाती है। नगर के लक्षाधिपति सामंत और सरदार उसकी प्रेम-दृष्टि की इच्छा करने लगते हैं। इन्हीं सामंतों में बीजगुप्त भी है। एक दिन चित्रलेखा कृष्णादित्य से बीजगुप्त का पर्याप्त साम्य देखकर चौंक उठती

है । बीजगुप्त के प्रणय-निवेदन पर वह उसे नकारात्मक उत्तर दे देती है किन्तु कुछ समय पश्चात् वह निर्णय करती है कि बीजगुप्त को उसके जीवन में आना ही पड़ेगा । तबसे चित्रलेखा और बीजगुप्त में प्रगाढ़ घनिष्ठता हो जाती है । दोनों शास्त्रानुसार विवाह न करके भी पति-पत्नी की भाँति पवित्र जीवन व्यतीत करने लगते हैं ।

तभी चित्रलेखा के जीवन में कुमारगिरि का आगमन नई हलचल उत्पन्न कर देता है । चित्रलेखा कुमारगिरि के संयम और तपश्चर्या जनित सुन्दर व्यक्तित्व क से प्रभावित होकर स्वयं अपने सौन्दर्य एवं वैदुष्य से कुमारगिरि का ध्यान आकृष्ट करना चाहती है । उधर कुमारगिरि चित्रलेखा के तर्कों का खंडन करते हुए भी उसके सौन्दर्य और ज्ञान की ओर खिंचता चला जाता है । यहीं से चित्रलेखा के प्रमुख प्रेम-त्रिकोण का संघर्ष प्रारम्भ होता है । चित्रलेखा और कुमारगिरि विभिन्न उपायों से एक-दूसरे को प्राप्त करने के प्रयत्न में लग जाते हैं और बीजगुप्त चित्रलेखा को पतन की ओर उन्मुख देख दुखी होता है । वह चित्रलेखा को रोकने का प्रयत्न करता है ।

इसी समय यशोधरा और श्वेतांक की प्रासंगिक कथा मुख्य कथानक में नवीन गति भर देती है । यशोधरा के जन्मोत्सव पर चित्रलेखा पुन: कुमारगिरि से मिलती है और उससे इतना प्रभावित होती है कि उसका नीतिकुशल मस्तिष्क बीजगुप्त से मुक्ति पाने का उपाय भी खोज निकालता है । वह बीजगुप्त के पारिवारिक जीवन के हितार्थ बीजगुप्त से यशोधरा का पाणिग्रहण करने का आग्रह करती है । कुमारगिरि भी बीजगुप्त को अपने मार्ग से हटाने के लिए इस विचार का समर्थन करता है । इसके उपरान्त चित्रलेखा कुमारगिरि के पास दीक्षा लेवक लेने के बहाने पहुँच जाती है और चित्रलेखा से निराश होकर बीजगुप्त बव का मन यशोधरा की ओर आकर्षित होने लगता है । अपने नीरस जीवन को सुखमय बनाने की दृष्टि से वह यशोधरा से विवाह करने का निश्चय करता है । कुमारगिरि इसकी सूचना पाकर इसका दुरुपयोग करता है । कुमारगिरि की वासना से द्वन्द्व की स्थिति में पड़ी हुई चित्रलेखा कुमारगिरि के प्रति समर्पित हो जाती है परन्तु विशालदेव से वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह पुन: अपने भवन में वापस लौट आती है और अपने चारित्रिक पतन पर पश्चाताप करने लगती है ।

बीजगुप्त को जब यह पता चलता है कि श्वेतांक भी यशोधरा से प्रेम करता है तो वह यशोधरा से अपने विवाह के निर्णय को स्थगित कर देता है और अपनी समस्त सम्पत्ति

श्वेतांक को सौंपकर यशोधरा से उसका विवाह करवा देता है। वह स्वयं सन्यासी के वेश में देशाटन के लिए प्रस्थान करने का निर्णय करता है। उसी समय चित्रलेखा क्षमायाचना के लिए उसके पास पहुँचती है। बीजगुप्त का प्रेम इतना उदार है कि वह पथभ्रष्टा चित्रलेखा को स्वीकार कर लेता है और दोनों पवित्र प्रेम के बंधन में बंधकर भिखारी के रूप में देश-विदेश की यात्रा पर निकल पड़ते हैं।

इस प्रकार वर्मा जी ने उपर्युक्त कथा के माध्यमसे समाज की खोखली मान्यताओं का प्रत्याख्यान करने का यत्न किया है। 'पतन' में प्रस्फुटित विचारमूल 'चित्रलेखा' में पल्लवित हुआ है। रत्नाम्बर महाप्रभु के माध्यम से वर्मा जी अपनी विचारधारा का प्रकाशन करते हैं- 'संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन:प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। ---- जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है - विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?'[1] पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि वर्मा जी का जीवन-दर्शन गीता से प्रभावित है। महाप्रभु रत्नाम्बर के उपर्युक्त कथन में गीता का प्रभाव स्पष्ट है। गीता में भगवान कहते हैं -

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्ध : स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।60।।[2]

अर्थात् हे अर्जुन ! जिस कर्म को तू मोह से नहीं करना चाहता है, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करेगा। एक आलोचक ने आरोप लगाया है कि उपर्युक्त श्लोक से प्रभावित होने के कारण वर्मा जी के विचारों में एकांगिता का दोष आ गया है।[3] उन्होंने 'आत्मपक्ष की अवहेलना' कर दी है, जबकि गीता में यंत्रवत् परिचालित इच्छाशक्ति के ऊपर आत्मशक्ति की सत्ता भी स्वीकार की गयी है। यह आरोप सत्य नहीं क्योंकि इसी आत्मशक्ति का संकेत बीजगुप्त के कथन में हुआ है। बीजगुप्त कहता है -'मनुष्य स्वतंत्र विचार वाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। और यह

1- चित्रलेखा- पृ० 177
2- गीता-अध्याय 18, पृ० 319
3- हिन्दी उपन्यास- डा० शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 230

परिस्थिति -चक्र क्या है, पूर्वजन्म के कर्मों के फल का विधान है। मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाय, वरन् अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे।"[1]

संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी- और न हो सकती है। संभवत: इसी कथन के कारण आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है -"भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' मनोवैज्ञानिक आधार पर एक नैतिक प्रश्न उठाती है। पश्चिमी उपन्यास 'थाया' की भी यही भूमिका है, परन्तु भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' दो पुरुषों के बीच घू घूमती हुई केवल कौतूहल की सृष्टि कर पाती है। वे नैतिकता को नया मनोवैज्ञानिक आधार देना चाहते हैं, अथवा यह कहें कि नये मनोविज्ञान पर नई नैतिकता का निर्माण करना चाहते हैं। पर इतने बड़े प्रश्न को इतनी हल्की कलम से सँभाल पाना सम्भव नहीं है। कदाचित् इसीलिए 'चित्रलेखा' एक प्रश्न बनकर रह गयी है।"[2] इस विचार से सहमत हो पाना कठिन है क्योंकि वर्मा जी ने मनोवैज्ञानिक आधार पर जिस नैतिकता की स्थापना करने का यत्न किया है, उसमें वह बहुत-कुछ सफल हुए हैं। महाप्रभु रत्नाम्बर 'अच्छी वस्तु (पुण्य) के सम्बंध में अपने विचार प्रकट करते हुए बुरी वस्तु(पाप) की परिभाषा भी प्रकारान्तर से कर देते हैं। वह कहते हैं -"अच्छी वस्तु वही है, जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो।"[3] इस 'दूसरे' में ही ब्रह्म, जगत एवं मानव की एकात्मकता स्थापित हो जाती है। बिल्कुल सीधे सरल शब्दों में शाश्वत सत्य का प्रस्तुतीकरण प्रशंसनीय है। पाप-पुण्य की समस्या के अतिरिक्त चित्रलेखा' में हिन्दू-दर्शन के प्रवृत्ति-मार्ग का सन्निवेश भी हुआ है। प्रवृत्ति मार्ग की दोनों धाराओं- गीता के कर्मवाद और चार्वाक के भोगवाद के प्रति वर्मा जी की आस्था प्रकट होती है, किन्तु वर्मा जी ने चार्वाक के भोगवाद को तादृश रूप में ग्रहण नहीं किया है वरन् उनके भोगवाद में उदात्तीकरण का विशेष महत्व है और सामाजिक दृष्टि लुप्त नहीं हुई है। बीजगुप्त के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। वह भौतिक सुखों के यथासम्भव भोग पर विश्वास करता है, किन्तु उसका सुखोपभोग दूसरों के लिए कष्टकर नहीं होता। उसमें भावना का उदात्तीकरण मिलता है। इसी कारण अपने भयानक अन्तर्द्वन्द्व से उबरकर वह यशोधरा को श्वेतांक ह के हाथों सौंप देने तथा उसके सुख के लिए अपनी सम्पत्ति का महान त्याग करने की उच्च स्थिति में दिखलायी देता है।

1-	चित्रलेखा-	पृ० 60
2-	आलोचना-13-	पृ० 59
3-	चित्रलेखा-	पृ० 14

'चित्रलेखा' में पाप-पुण्य का परीक्षण मुख्यत: प्रेम और यौन-सम्बंधों को आधार बनाकर किया गया है, अत: प्रेम सम्बंधी विचार विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किए गये हैं। चित्रलेखा के जीवन के माध्यम से वर्मा जी ने प्रेम के विभिन्न रूपों को देखने का यत्न किया है। अपने वैवाहिक जीवन में चित्रलेखा के लिए 'प्रेम ईश्वरीय था', उसमें नि:सीम भक्ति और आत्म-बलिदान की भावना विद्यमान थी।[1] पति की मृत्यु के पश्चात् कृष्णादित्य उसके जीवन में आया और उसने अनुभव किया कि प्रेम प्राकृतिक है और उसमें आत्म-विस्मरण अर्थात् अपने और प्रेमी के अस्तित्व को एक में मिला देने की भावना[2] प्रमुख थी; किन्तु बीजगुप्त के सम्पर्क में आने पर उसे प्रेम की मादकता[3] प्रमुख०थी०;०किन्तु०बीजगुप्त०के०सम्पर्क में०आने०पर०उसे०प्रेम०की का अनुभव हुआ। और कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट होने पर चित्रलेखा इस निर्णय पर पहुँचती है कि 'सेवा और भक्ति स्वयं का विस्मरण और अतृप्त प्यास- ये प्रेम के द्योतक है।'[4] बीजगुप्त भी पहले प्रेम को ईश्वरीय, अमर एवं आत्मा के सम्बंध के रूप में स्वीकार करता है किन्तु अंतत: वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'प्रेम स्वयं एक त्याग है, विस्मृति है, तन्मयता है।'[5] इसी प्रकार प्रेम के सम्बंध में श्वेतांक का दृष्टिकोण भी उपर्युक्त धारणा से मिलता है -' जीवन में आवश्यक है एक -दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना- एक दूसरे से प्रगाढ़ सहानुभूति और एक दूसरे के अस्तित्व को एक कर देना ही प्रेम है।'[6] इन सभी विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्मा जी प्रेम में त्याग, आत्म-विस्मृति एवं तन्मयता को आवश्यक मानते हैं।

'पतन' की भाँति 'चित्रलेखा' में भी वर्मा जी ने विवाह को आवश्यक माना है और उसे व्यक्ति के कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया है -'स्त्री अबला है। प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि वह एक अबला को आश्रय दे। विवाह द्वारा ही पुरुष अबला स्त्री को आश्रय देता है। यदि पुरुष स्त्री को आश्रय न दे, तो स्त्री की दशा बड़ी शोचनीय हो जाय। इधर पुरुष के सामने भी काफी कठिनाइयाँ आवें। जिस समय तुम विवाह न

1-	चित्रलेखा-	पृ0 82
2-	वही-	पृ0 83
3-	वही-	पृ0 83
4-	वही-	पृ0 87
5-	वही-	पृ0 175
6-	वही-	पृ0 100

करके सन्यासी होने की बात सोचते हो, तुम कायरता करते हो । एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है, उससे तुम विमुख होते हो ।'[1] 'पतन' में विवाह को सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक माना गया है । उपर्युक्त कथन में समाज का स्पष्ट निर्देश तो नहीं है किन्तु 'स्त्री के प्रति कर्तव्य' की बात उठाकर समाज के प्रति कर्तव्य होने की ओर संकेत कर दिया गया है । परन्तु बीजगुप्त द्वारा विवाह की जो परिभाषा दी गयी है, वह नवीन है और समाज का मुँह नहीं ताकती -'स्त्री और पुरुष के चिर-स्थायी सम्बन्ध को ही विवाह कहते हैं ।'[2] और स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक सम्बंध के प्रति वर्मा जी का दृष्टिकोण अत्यंत मनोवैज्ञानिक एवं परम्परा-समर्थित है । स्त्री अपने से अधिक सशक्त पुरुष को ही प्रेम कर सकती है । चित्रलेखा कहती है -'पुरुष पर आधिपत्य जमाने की इच्छा स्त्री के पुरुष से प्रेम की द्योतक नहीं, प्रकृति ने स्त्री को शासन करने के लिए नहीं बनाया है । स्त्री शासित होने के लिए बनायी गयी है ; आत्म-समर्पण करने के लिए । स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती, जिस मनुष्य पर उसने आधिपत्य जमा लिया, वह मनुष्य उसके प्रेम का अधिकारी हो ही नहीं सकता । स्त्री का चरित्र है आत्म-समर्पण, अपने अस्तित्व को अपने प्रेमी के अस्तित्व में मिला देना ; इसीलिए स्त्री उसी मनुष्य से प्रेम कर सकती है, जो उस पर विजय पा सके, जो उस पर आधिपत्य जमा सके ।'[3] किन्तु पुरुष की सबलता को महत्व देनेवाली चित्रलेखा पुरुष की समता करने में भी नहीं चूकती और नारी-स्वातंत्र्य की आवाज उठाती दिखती है । वह कुमारगिरि से कहती है -'पुरुष दो विवाह कर सकता है, और वह दोनों पत्नियों से प्रेम कर सकता है ; फिर स्त्री क्यों ऐसा नहीं कर सकती । स्त्री अपने पति से उतना ही प्रेम कर सकती है, जितना अपने पुत्र से । अधिक आत्मिक सम्बंध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है ।'[4] चित्रलेखा के कथन का प्रथमांश तो उचित लगता है, किन्तु उत्तरांश तर्कसंगत नहीं । ध्यातव्य है कि प्रेम की चर्चा प्रेमियों के प्रसंग में हो रही थी न कि पति-पुत्र के सम्बंध में । पति और पुत्र के प्रेम में पर्याप्त अंतर होता है ।

नियति और परिस्थिति के चक्र पर अत्यधिक विश्वास करनेवाले वर्मा जी ने सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में होनेवाले शास्त्रार्थ के माध्यम से नीति, धर्म और ईश्वर की नवीन व्याख्या

1- चित्रलेखा- पृ० 148

2- वही- पृ० 77

3- वही- पृ० 134

4- वही- पृ० 106

व्याख्या प्रस्तुत की है। मंत्री चाणक्य के कथनों के द्वारा वर्मा जी का नवीन चिन्तन प्रकाशित हुआ है। वह नीति और धर्म की परिभाषा करते हुए कहते हैं -'धर्म समाज द्वारा निर्मित है। धर्म ने नीति-शास्त्र को जन्म नहीं दिया है, वरन् इसके विपरीत नीति-शास्त्र ने धर्म को जन्म दिया है। समाज को जीवित रखने के लिए समाज द्वारा निर्धारित नियमों को ही नीति-शास्त्र कहते हैं, और इस नीति-शास्त्र का आधार तर्क है। धर्म का आधार विश्वास है और विश्वास के बन्धन से प्रत्येक मनुष्य को बाँधकर उससे अपने नियमों का पालन कराना ही समाज के लिए हितकर है। इसीलिए ऐसी भी परिस्थितियाँ आ सकती हैं, जब धर्म के विरुद्ध चलना समाज के लिए कल्याणकारक हो जाता है और धीरे-धीरे धर्म का रूप बदल जाता है।'[1] इसी प्रकार ईश्वर सम्बन्धी धारणा ईश्वर के चिरंतन -रूप को स्वीकार करते हुए भी नवीन है -'हाँ, ईश्वर अनादि है; पर उस ईश्वर को, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, कोई नहीं जानता - वह कल्पना से परे है। ------ यदि तुम ईश्वर को ही जान सको, यदि तुम्हारी कल्पना में वह अखण्ड और नि:सीम अनन्त का रचयिता आ सके, तो फिर वह ईश्वर कैसा ? पर योगी, हमारा और तुम्हारा ईश्वर, जिसकी हम पूजा करते हैं, उस ईश्वर से भिन्न है। हमारा और तुम्हारा ईश्वर कल्पना-जनित ईश्वर है। अपनी आवश्यकता को पूरी करने के लिए ही समाज ने उस ईश्वर को जन्म दिया है। ------- उसके (ईश्वर के) भिन्न-भिन्न समाजों की कल्पना के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप हैं।'[2] इसके पश्चात् अंतरात्मा की व्याख्या 'पतन' के अनुरूप ही की गयी है।

'पतन' में प्रस्फुटित और 'चित्रलेखा' में पल्लवित वर्मा जी के नवीन दृष्टिकोण को विस्तार से देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी के जीवन - दर्शन में 'व्यक्ति' की स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की आकांक्षा अवश्य है, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी वह समाज को पूर्णरूपेण छोड़ नहीं सके। समाज की भ्रांतिपूर्ण धारणाओं के खण्डन की प्रवृत्ति उनमें प्रबल रूप से विद्यमान है और 'व्यक्ति' के विवेक एवं 'कर्तव्याकर्तव्य के विचार' को वह पर्याप्त महत्व देते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में व्यक्ति का विवेक अर्थात् अंतरात्मा समाज की धारणाओं से ही निर्मित होती है।

1- चित्रलेखा- पृ० 34-35

2- वही- पृ० 36

`चित्रलेखा` की कथावस्तु से स्पष्ट है कि वर्मा जी की विचारधारा परोक्ष रूप से आश्रम धर्म से प्रभावित है। भारतीय संस्कृति में विद्या, गृहस्थ, सन्यास एवं वानप्रस्थ धर्म के लिए समय-सीमा का स्पष्ट निर्धारण किया गया है। जो व्यक्ति इनकी अपेक्षा करके आगे बढ़ना चाहता है, उसे सफलता नहीं मिलती। कुमारगिरि गृहस्थ धर्म की अवस्था में संयम-सिद्ध बनना चाहता था है, वह स्त्री को वासना-मूर्ति, मोह-माया और अंधकार मानकर उसके प्रति अपनी इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता ; परन्तु स्त्री के सम्पर्क में आते ही उसकी दमित वासनाएँ प्रबलतम वेग से उस पर आक्रमण करती हैं। कुमारगिरि का पतन दिखलाकर वर्मा जी ने भारतीय संस्कृति का उपहास नहीं किया है, वरन् उसकी पुर्नस्थापना की है। विश्वामित्र-मेनका का पुनरास्थान ही `चित्रलेखा` में कुछ नवीन ढंग से हुआ है। इसके विपरीत बीजगुप्त का स्वस्थ उपभोग उसे त्याग की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है। इस प्रकार वर्मा जी ने स्वस्थ एवं सुष्ठु भोगवाद का समर्थन किया है, उनके इसी जीवन-दर्शन को थोड़े बहुत फेर-बदल से अन्य उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली है।

<u>तीन वर्ष :-</u> `तीन वर्ष` का प्रकाशन सन् 1936 में `चित्रलेखा` के 2 वर्ष पश्चात् हुआ था। इस उपन्यास का मुख्य-विषय `चित्रलेखा` की भाँति प्रेम है, किन्तु इस उपन्यास में उसके दो पहलू उभरकर आए हैं। वे हैं - अर्थ और काम। इस बार वर्मा जी ने काल्पनिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को छोड़ ऐसे वातावरण को चुना, जो उनके निजी अनुभव का क्षेत्र रह चुका था और उपन्यास-साहित्य के लिए नवीन भी। एक समीक्षक ने लिखा है - `भगवतीचरण वर्मा के `तीन वर्ष` में सर्वप्रथम विश्वविद्यालय के वातावरण को सजीव बनाने का प्रयत्न किया गया, एक तो छोटे-से-छोटे विवरण पर ध्यान देकर तथा दूसरे विद्यार्थियों के पारस्परिक संवादों द्वारा। साथ ही एक सरल ग्रामीण विद्यार्थी की वास्तविक परिस्थिति को तटस्थ रूप में चित्रित करने का भी उन्होंने सफल प्रयास किया और बताया कि किस प्रकार विश्वविद्यालय की चमक-दमक में रमेश जैसे ग्रामीण विद्यार्थी अपना लक्ष्य खो बैठते हैं और लड़कियों के लिए बसों एवं रिक्शों के पीछे दौड़ते हैं।`[1] ऐसा नहीं है कि वर्मा जी ने सर्वप्रथम विश्वविद्यालयीय जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है, परन्तु यह अवश्य है कि वर्मा जी के निजी अनुभवों पे ने इस विश्वविद्यालय के जीवन को प्रथम बार साकार कर दिया है। `तीन वर्ष` में लड़कियों के लिए रिक्शे और बसों के पीछे दौड़ने की स्थिति नहीं है। `तीन वर्ष` में एक ऐसे निम्न-मध्यवर्गीय जीवन से सम्बद्ध युवक की कहानी

1- हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन-शान्तिस्वरूप गुप्त, पृ0 118

है जो अपनी प्रतिभा के सहारे जीवन में ऊँचा उठने के लिए विश्वविद्यालय में अध्ययनार्थ आता है किन्तु परिस्थितियाँ उसे कहीं और ले जाती हैं और वह अपने लक्ष्य से तो छिटक ही जाता है, प्रेम के क्षेत्र में भी उसे असफलता मिलती है।

रमेश विश्वविद्यालय में अपने प्रथम दिवस में ही अजित से परिचित हो जाता है। अजित एक राजा का पुत्र है किन्तु अपने धनी होने को वह केवल 'विधि के विधान' के रूप में देखता है, इसी प्रकार वह रमेश से अपनी मित्रता में भी 'विधि के विधान' को देखता है और उसे हर प्रकार से सम्पन्न बनाने का यत्न करता है। रमेश अजित के ही कारण प्रभा से मिलता है और उससे प्रेम करने लगता है। रमेश अजित के सम्पर्क में आने के कारण सम्पन्न तो हो जाता है, किन्तु अपने मध्यमवर्गीय संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाता। उसकी दृष्टि में 'प्रेम का अन्त है विवाह', परन्तु प्रभा एक उच्चवर्गीय युवती है। वह प्रेम को विवाह का आधार नहीं मानती। उसका विचार है कि -"कोई भी स्त्री जब किसी पुरुष से विवाह करती है, तो इस आशा से करती है कि वह पुरुष उसको जीवन में सुखी बनाएगा। हमारा जीवन केवल भोग-विलास ही तो नहीं है। भोग-विलास तो जीवन के कई अंगों में एक अंग है। भोग-विलास तो बाद की बात है - सबसे पहले प्रश्न आता है रोटी का, हमारी नित्य की आवश्यकताओं का। यदि हमारी नित्य की आवश्यकताएँ नहीं पूरी होतीं, यदि हम भूखों मरते हैं, तो प्रेम अकेले तो हमें जीवित नहीं रख सकता। विवाह को मैं स्त्री और पुरुष के बीच आर्थिक सम्बंध के रूप में मानती हूँ।"[1] रमेश देखता है कि प्रभा की नित्य की आवश्यकताएँ (आलीशान बंगला, चार -छः नौकर, कार और दोस्तों को पार्टी देने के लिए धन) पूरी कर पाने की क्षमता उसमें नहीं है। प्रभा द्वारा विवाह के प्रस्ताव को ठुकराए जाने पर रमेश को इतना आघात लगता है कि वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। इसी असंतुलित स्थिति में वह अजित के उपकारों को भूल उस पर गोली चला बैठता है। प्रभा के प्रेम का आवरण जब रमेश की आँख पर से हटता है तो उसे इस वास्तविकता का आभास होता है कि अमीरों का समाज अभिशप्त समाज है, वहाँ लोग पशुओं से गये-बीते हैं, धन के पिशाच ने वहाँ सबको गुलाम बना लिया है। उपन्यास के प्रथम खण्ड के कथानक के माध्यम से वर्मा जी ने सामाजिक वर्ग-भेद की विडम्बना का चित्रण किया है, किन्तु वर्मा जी मानते हैं कि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विषमता एवं असमानता विद्यमान है।

1- तीन वर्ष - पृ० 130-31

समाज में कहीं भी समता का अस्तित्व नहीं है । अजित कहता है -`बल स्वामी है --शारीरिक अथवा आत्मिक-- और निर्बलता गुलाम है । विषमता अथवा असमानता का नियम है एक और स्वामित्व और दूसरी और गुलामी । ----- यह निश्चय है कि हम सब गुलाम है और हम सब सम्पत्ति हैं -- अपने से अधिक बलवानों की । केवल बल का केन्द्र भिन्न है,कुछ का बल धन में है, कुछ का बल विद्या में है और कुछ का बल उनके शरीर में है ।`[1]

रमेश समाज की विषमता का शिकार बनकर अध्ययन-कार्य छोड़कर कानपुर पहुँचता है । वह मदिरा के सहारे इस विषमता के जहर को उतारना चाहता है । कानपुर जाते हुए गाड़ी में ही उसे एक और दोस्त मिल जाता है और उसके माध्यम से वह एक नये समाज से परिचित होता है । विनोद रमेश को वेश्याओं के यहाँ ले जाता है । इस प्रकार रमेश सरोज नामक वेश्या से परिचित होता है । सरोज अपनी वर्गगत विशेषता के विपरीत अत्यंत भावुक युवती है और एक सद्गृहिणी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है । रमेश को देखकर वह इस स्वप्न को सत्य बनाने के उद्यम में लग जाती है, परन्तु प्रभा के प्रेम से निराश रमेश हर स्त्री को प्रभा की तरह स्वार्थी, बेवफा एवं पैसे की गुलाम मान बैठता है और सरोज की प्रेम- भावना की उपेक्षा करता है । सरोज रमेश की उपेक्षा से घुल-घुलकर रोगिणी होकर अपने प्राण त्याग देती है और अपनी चार लाख की सम्पत्ति रमेश के नाम छोड़ जाती है । सरोज के इस त्याग से रमेश की आँख खुलती है । वह सरोज की सम्पत्ति का स्वामी बनकर जब पुन: प्रयाग लौटता है तो उसकी भेंट प्रभा से होती है । प्रभा रमेश के धन के लालच में आकर उससे विवाह का प्रस्ताव करती है, तब रमेश उस पर कटाक्ष करता है -`तुम पुरुष का धन लेती हो, पुरुष को अपना शरीर देने के बदले में - है न ऐसी बात । और यह वेश्या-वृत्ति है ।`[2]

`तीन वर्ष` के दो खण्डों की कथा के माध्यम से वर्मा जी ने नारी के दो रूपों को उद्घाटित किया है । एक ओर प्रभा है जो संभ्रांत उच्चकुलीन वर्ग की प्रतिष्ठित नारी होकर भी अपनी स्वार्थवृत्ति के कारण वेश्या से भी गयी-बीती है । दूसरी ओर सरोज है- जो अपनी पवित्र भावना के कारण वेश्या-समाज के कलंक को मिटाती प्रतीत होती है । वेश्या-सुधार की भावना हिन्दी साहित्य के लिए नवीन वस्तु नहीं । प्रेमचन्द के उपन्यासों में वेश्याओं के उद्धार की आकांक्षा दिखती है और उनके मन की पवित्रता एवं उदारता

1- तीन वर्ष- पृ० 99-100

2- वही- पृ० 255

की संभावना की ओर भी दृष्टिपात किया गया है। इसी प्रकार बंगला उपन्यासकार शरतचंद्र के उपन्यासों में भी वेश्याओं के चरित्र को ऊँचा उठाया गया है परन्तु तीन वर्ष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें वेश्या-मनोवृत्ति को असली रूप में सामने लाने के लिए कथानक को इस प्रकार गढ़ा गया है कि इसमें वेश्या वृत्ति प्रभा में दिखती है न कि सरोज में।

'तीन वर्ष' के प्रथम भाग में लीला और अविनाश की प्रासंगिक कथा के द्वारा उच्च वर्ग की रूमानी वृत्ति एवं द्वितीय भाग में विनोद, बाँकेलाल आदि के द्वारा वेश्या-समाज में रमनेवाले रसिकों का सुन्दर चित्रण किया गया है। 'तीन वर्ष' में 'पतन' और 'चित्रलेखा' की पाप-पुण्य, प्रेम-विवाह और नियतिवाद आदि समस्याओं पर विचार व्यक्त किए ही गये हैं। इनसे आगे बढ़कर इस उपन्यास में पैसे की अमोघ शक्ति के महत्व को स्वीकारा ~~किया~~ गया है तथा समाज में विषमता को एक अवश्यम्भावी तत्व के रूप में देखा गया है। वर्मा जी का विचार है कि ये दोनों अभिशाप की तरह हमारे जीवन से जुड़ गये हैं और इनसे किसी भी प्रकार मुक्ति नहीं पायी जा सकती। वर्मा जी के इस मत का प्रकाशन उनके अन्य उपन्यासों में भी हुआ है।

<u>टेढ़े मेढ़े रास्ते :-</u> 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' सन् 1946 में 'तीन वर्ष' के दस वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुआ। यह एक राजनीतिक उपन्यास है, इसमें सन् 1930 के आसपास की हलचलों का विस्तृत अंकन हुआ है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने देश की तीन प्रमुख पार्टियों की क्षमताओं एवं दुर्बलताओं का चित्रण उपन्यास के तीन प्रमुख पात्रों के माध्यम से किया है। दयानाथ कांग्रेस पार्टी, उमानाथ कम्यूनिस्ट पार्टी एवं प्रभानाथ क्रांतिकारी दल के सदस्य हैं, इनके और इनके साथियों के विचारों एवं गतिविधियों से इनकी पार्टियों की नस पकड़ने का प्रयत्न वर्मा जी ने किया है और उन्हें सफलता मिली है। इन तीनों के पिता पंडित रामनाथ तिवारी नवीन शिक्षा और सभ्यता से परिचित किन्तु प्राचीन संस्कृति एवं परम्पराओं के उपासक, अपनी आनबान पर मर मिटनेवाले ताल्लुकेदारों के प्रतीक हैं। परन्तु उनकी कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं, जिनके प्रति वर्मा जी का पर्याप्त झुकाव दिखता है।

रामनाथ तिवारी, एक ~~न~~ शक्ति-सम्पन्न, सबल व्यक्तित्व-धनी एवं अहम्मन्य ताल्लुकेदार एवं ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। ब्रिटिश अधिकारी उनकी राजभक्ति से प्रभावित होकर उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। अपने इलाके में उनका काफी दबदबा है। इन्हीं सब कारणों से उनकी अहम्मन्यता चरम-सीमा तक पहुँच गयी है। वे उचित-अनुचित किसी

बात में भी किसी के समक्ष झुकने को तैयार नहीं । उनकी यह अहम्मन्यता उनके पुत्रों को भी विरासत में मिली है, इसी कारण तीनों अपने पिता के विचारों से विद्रोह करते हुए अपने लिए पृथक्-पृथक् रास्तों का चयन करते हैं । दयानाथ कांग्रेसी बनकर पिता का कोपभाजन बनता है । रामनाथ उसे अपनी रियासत के उत्तराधिकारी पद से वंचित कर देते हैं । इतना ही नहीं, उसका अपमान करते हुए उसे घर से निकाल देते हैं, परन्तु दयानाथ पिता की ममता और सम्पत्ति को ठुकराते हुए अपने राजनीतिक पथ पर पूर्ण निष्ठा से आगे बढ़ता है। धीरे-धीरे अपनी पार्टी की दुर्बलताएँ उसे झकझोरने लगती हैं और सबसे अधिक उसकी अहम्मन्यता उसके पैर की बेड़ी बन जाती है। वह अपने साथियों से भी समान स्तर पर नहीं मिल पाता, परिणामस्वरूप उसे चुनाव में पराजित होना पड़ता है । इस पराजय से निराश होकर वह पिता का द्वार खटखटाता है, परन्तु स्वाभिमानी पिता को अपने पुत्र की आन्तरिक पराजय अपने कुल का कलंक प्रतीत होती है और वह दयानाथ को डाँटकर पुनः अपने कर्मपथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने कुल की मर्यादा के हित में अपने पुत्र से हाथ धो बैठते हैं ।

रामनाथ का दूसरा पुत्र उमानाथ जर्मनी से शिक्षा प्राप्त करके लौटता है । वह अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन के सदस्य तथा भारत में कम्युनिस्ट पार्टी के उच्च अधिकारी के रूप में, देश में नयी आर्थिक क्रांति लाने के लिए प्रयत्नशील होता है । देश में बढ़ते हुए पूँजीवाद और ब्रिटिश साम्राज्य से विद्रोह करना उसका लक्ष्य बन जाता है, परन्तु अपनी गैर-जिम्मेदारी और अनुभवहीनता के कारण वह ब्रिटिश शासन की नज़रों में चढ़ जाता है और उसके नाम वारंट निकाल दिया जाता है । वह सरकार की आँखों में धूल झोंककर विदेश भाग जाना चाहता है, अतः आर्थिक सहायता के लिए पिता के पास पहुँचता है, किन्तु रामनाथ उसे (कम्युनिस्टों को) अपना, पूँजीपतियों का तथा ब्रिटिश शासन का भयानक शत्रु बतलाकर आर्थिक सहायता देने से इन्कार कर देते हैं । वे कहते हैं - "मिटाना--मिटाना ! यही तुम लोग सीख सके हो -- तुम्हारी सारी शिक्षा और सारी संस्कृति तुम्हें केवल इतना सिखा सकी है कि मिटाओ । लेकिन मिटा वही सकता है, जो सबल है ।"[1] वर्मा जी ने सबसे कटु आलोचना उमानाथ के माध्यम से कम्युनिज़्म की ही की है, जिससे भारतीय समाज की उस मनोवृत्ति का प्रकाशन होता है जिसमें कम्युनिस्टों के सर्वाधिक उपयोगी सिद्धान्तों की

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते - पृ० 495

उपेक्षा करके उनके आचार-विचार, भौतिकवादी दृष्टिकोण एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के आग्रह के कारण भारतीय संस्कृति को भूल जाने का विरोध किया जाता है। उमानाथ अपनी संस्कृति से एकदम कट गया है, वह एक पत्नी के रहते हुए दूसरी जर्मन स्त्री से विवाह कर लेता है, भारतीय शिष्टाचारों के प्रति उसकी ब कोई आस्था नहीं रह गयी है, इसका तो वर्मा जी ने व्यंग्यात्मक चित्र खींचा ही है साथ ही पार्टी के कतिपय दोषों को भी उद्घाट उद्घाटित कर दिया है। मार्कण्डेय कम्युनिस्ट पार्टी की असलियत बताते हुए कहता है - "कम्यूनिस्टों में अधिकतर मध्यवर्ग के लोग ही हुए हैं, ऐसे लोग, जिनका दुनिया के घमण्डी पूँजीपतियों से मुकाबला हुआ और उनके मन में पूँजीपति वर्ग के स्वार्थ, अभिमान और उच्छृंखलता के प्रति विद्रोह पैदा हुआ। जिन लोगों में पूँजीपति के भाग्य पर ईर्ष्या हुई, जिन्होंने लगातार यह सोचा, कि उन्हें वे सब सुविधाएँ क्यों नहीं मिलतीं, जो पूँजीपतियों को प्राप्त हैं। ईर्ष्या और ईर्ष्याजनित विद्रोह पर ही कम्यूनिज्म की नींव पड़ी है।"[1] मार्कण्डेय आगे कहता है -"क्या तुम यह बतला सकते हो कि दुनिया में किस कम्यूनिस्ट ने दूसरों की गरीबी से द्रवित होकर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है ? तुम बता सकते हो कि किस कम्यूनिस्ट ने ऐयाशी, भोग-विलास छोड़े हैं, तुम बता सकते हो कि किस कम्यूनिस्ट ने त्याग किया है?"[2] इस आक्षेप पर उमानाथ कहता है कि दान,त्याग,दया मूर्खों के लिए बने हुए सिद्धान्त हैं, इन पर बुद्धिवादी कम्यूनिस्ट विश्वास नहीं करता। इस पर मार्कण्डेय उस पर व्यंग्य करता है -" ठीक कहते हो उमानाथ। यह चीजें जिनका मतलब है `देना` -- इन पर तुम्हें विश्वास नहीं। तुम्हारा सिद्धान्त है लेना --- ठीक वही सिद्धान्त, जो पूँजीपति का है। कम्यूनिज़्म एक तरह से पूँजीवाद से भी भयानक है, क्योंकि पूँजीवाद में जहाँ महज `लेना` ध्येय है, वहाँ कम्यूनिज़्म का ध्येय `लेने` के साथ `मारना और मिटाना` भी है। दूसरे शब्दों में कम्यूनिज्म पूँजीवाद की प्रतिक्रिया भर है और साथ ही कम्यूनिज़्म में पूँजीवाद की हिंसा की एक विनाशात्मक प्रतिहिंसा भी है, जो समाज के लिए कहीं अधिक भयानक है।"[3] कम्यूनिज़्म की एक और विशेषता की ओर वर्मा जी ने दृष्टिपात किया है, वह यह है कि कम्यूनिस्ट अपने देश की ओर न देखकर रूस की ओर ही

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 436

2- वही- पृ० 436

3- वही- पृ० 437

निहारता रहता है। ऐसा नहीं है कि उमानाथ के द्वारा इन आरोपों का प्रतिवाद ही नहीं किया जाता, परन्तु वे प्रतिवाद इतने प्रभावशाली नहीं है कि इन आरोपों को गलत ठहरा सकें।

रामनाथ का सबसे छोटा पुत्र प्रभानाथ अपने बड़े भाई उमानाथ को लेने कलकत्ता जाता है, वहीं आकस्मिक रूप से उसकी भेंट क्रांतिकारी दल की सदस्या वीणा से होती है वीणा से प्रभावित होकर वह भी उस दल में सम्मिलित हो जाता है। पार्टी के लिए धन प्राप्त करने के लिए वह अपने साथियों को पूर्ण सहयोग देता है। उसकी पार्टी के सदस्यों में पूरा उत्साह भी दिखता है, किन्तु उसके सरदार मनमोहन के शब्दों में पार्टी में व्याप्त निराशा की झलक मिल जाती है। सन् 1930 तक देश में क्रांतिकारी आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा था। अर्थाभाव और अपने रहस्यमय, नीरस और खतरों से भरे जीवन के कारण इन स्वतंत्रता-बलिदानियों में निराशा आने लगी थी- ऐसा वर्मा जी का विचार है, जिसे उन्होंने मनमोहन के शब्दों में प्रकट किया है। फिर भी सिर पर कफन बाँधकर चलनेवाले वीरों का बड़ा मार्मिक चित्रण वर्मा जी ने किया है। मनमोहन प्रभानाथ से इस दल को छोड़ देने का आग्रह करता है और अपनी मृत्यु के समय वचन भी लेता है, किन्तु प्रभानाथ और वीणा को पार्टी के सरदार के रूप में सजग भी करता है। वह वीणा से कहता है - 'मुझे पूरा अधिकार है, वीणा जी। मुझे तो यहाँ तक अधिकार है कि मैं आप लोगों से प्रेम करने को मना कर दूँ। लेकिन नहीं -- यह सब करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। ---- पर आप भी एक बात याद रखिए। अपने प्रेम में आप अपने को खो न दीजिएगा। आप यह न भूल जाइएगा कि दुनिया को सुखी बनाने के लिए आपने अपने को शैतान के हाथ बेंच दिया है। दुनिया को आसमान पर उठाने के लिए आप स्वयं रसातल में पहुँच चुकी हैं,
दुनिया०को०आसमान०पर०उठाने०के०लिए०आप०स्वयं०रसातल०में
जहाँ मनुष्यता नाम की चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है। यह सारी भावनाएँ, यह ममता, यह प्रेम, यह सपने -- ये सब-के-सब आपके साथ तभी तक हैं, जब तक ये आपके एकमात्र सिद्धान्त के संघर्ष में नहीं आते। ये सब-के-सब जीवन में एक क्षण के लिए आकर निकल जानेवाले, झूठ हैं -- सत्य है केवल एक सिद्धान्त, देश के हित के लिए अपने को मिटा देनेवाला एक सिद्धान्त।'[1] प्रभानाथ और वीणा बराबर इस नसीहत का ख्याल रखते हैं। प्रभानाथ रेल-डकैती में घायल होने के कारण गिरफ्तार हो जाता है। पुलिस अधिकारी

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 27।

उसे मुखबिर बनाना चाहते हैं, अपने चाचा श्यामनाथ की ममता उसे थोड़ी देर के लिए कमजोर बनाती है, किन्तु पिता उसकी आँख खोल देते हैं - 'प्रभा ! अपने कर्मों का उत्तरदायी मनुष्य स्वयं होता है । किसी के विवश करने से जिसे तुम अनुचित समझते हो, उसे करना कहाँ तक उचित है, इसका निर्णय तुम्हारे हाथ में है ।'[1] इस प्रकार रामनाथ अपने कुल-गौरव की रक्षा के लिए अपने तीसरे बेटे की बलि भी दे देते हैं । प्रभानाथ हँसते-हँसते मर जाने का निश्चय कर लेता है और उसकी सहायता करती है वीणा, वह अपनी अँगूठी में पोटाशियम साइनाइड का जहर देकर अपने सुहाग के टीके को स्वयं धो डालती है और स्वयं भी पुलिस अधिकारी की हत्या करके आत्महत्या कर लेती है । इस प्रकार अपने वैयक्तिक जीवन की बलि चढ़ाकर प्रभानाथ और वीणा देश के लिए कुर्बान हो जाते हैं । दयानाथ, उमानाथ और प्रभानाथ तीनों के द्वारा वर्मा जी ने देश की राजनीतिक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । तीनों में कार्य करने की शक्ति है, अपने दल के प्रति निष्ठा है, किन्तु राजनीतिक पार्टियों की कुछ दुर्बलताएँ एवं कुछ उनके वैयक्तिक जीवन की दुर्बलताएँ उनके रास्तों को टेढ़ा-मेढ़ा सिद्ध कर देती हैं ।

रामनाथ उस सामन्तवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं, जिसमें कुल के कर्ता का स्वामित्व होता है। वह अपने इलाके की व्यवस्था के साथ-साथ अपने परिवार का संचालन भी करते हैं । कर्ता का अधिकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी उत्तराधिकारी को मिलता है । रामनाथ इसी धारणा से अपने पुत्रों को बाँधना चाहते हैं, वह प्रभानाथ से कहते हैं - 'तुम दयानाथ के यहाँ नहीं जाओगे - समझे । दया को मैंने - रामनाथ तिवारी ने दण्ड नहीं दिया है, दयानाथ को दण्ड दिया है इस कुल के कर्ता ने, इस कुल की ओर से । जब तक मैं इस कुल का कर्ता हूँ, संचालक हूँ, तब तक मेरी प्रत्येक बात, मेरा प्रत्येक निर्णय, कुल का निर्णय है, उसके प्रत्येक सदस्य का निर्णय है । याद रखना कि आज वाला तुम्हारे पिता का अधिकार कल तुम्हारे बच्चों के साथ तुम्हारा अधिकार होगा ।'[2] किन्तु रामनाथ के पुत्र इस अधिकार के लालायित नहीं, इसीलिए वह अपने पिता का विरोध करते हैं । इनके माध्यम से वर्मा जी ने युग की बदलती हुई विचारधारा का अंकन भी किया है । अपने पुत्रों के इस विद्रोह से रामनाथ अपने को अपमानित अनुभव करते हैं, उनमें भयानक अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है । वे सोचते हैं - 'फिर यह सब क्यों ? मेरे निर्णय का विरोध मेरे घर में ही हो रहा है --

---

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 46।

2- वही- पृ० 51-52

मेरे लड़के ही मेरे निर्णय का विरोध करने पर तुल गये हैं। आखिर यह सब क्यों ?----- यह क्यों ? यह सब कुछ बदल कैसे गया ? एकदम बदल गया, मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ। दया कांग्रेस में शामिल हो गया, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारने को वह तैयार है। और बड़ी बहू। मेरे सामने उसे बोलने की हिम्मत कैसे हो गई ? बोलने की ही नहीं, जबान लड़ाने की। और प्रभा। वह भी मुझसे कहता है कि मैं गलती कर रहा हूँ। क्या वास्तव में मैं गलती कर रहा हूँ।'[1] इसके आगे सोचते-सोचते वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'युग की नवीनता, देख रहा हूँ, सीमाओं को एक बार ही तोड़ डालने पर तुल गयी है।'[2]

यह युग की नवीनता केवल परिवार में ही नहीं है। रामनाथ तिवारी के विरुद्ध परमेश्वर एवं फगड्डू आदि ग्रामीण-जनों का विद्रोह तथा दयानाथ के प्रति ब्रजदत्त का संघर्ष नये युग का प्रतीक है। इनके माध्यम से वर्मा जी ने दिखलाया है कि शक्ति का केन्द्र बदल रहा है। शोषित वर्ग शोषक वर्ग के प्रभुत्व को अधिक समय तक टिकने न देगा। आज शक्ति जनता के हाथ में आ रही है। हर व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। अत: रामनाथ को, जो स्वयं को अत्यंत शक्तिशाली मानते हैं, अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर, परिवार वीणा, विश्वम्भरदयाल-पुलिस कर्मचारी आदि सभी से अपमानित होना पड़ता है। वह किसी के सामने झुकते नहीं, अपने अन्दर की कमजोरियों से भी भरसक लड़ने का यत्न करते हैं, इसमें सफल भी होते हैं, किन्तु इस लड़ाई से वह धीरे-धीरे ऐसा टूटते जाते हैं कि अंत में एक छोटे से बच्चे के समक्ष उनकी सारी अहम्मन्यता पिघलकर बह जाती है।

एक ओर रामनाथ हैं जिन्हें अपनी समस्त अहम्मन्यता और शक्ति के बावजूद युग-परिवर्तन की शक्ति के समक्ष झुकना पड़ता है, तो दूसरी ओर फगड्डू मिसिर हैं; जो सामान्य अनपढ़ ग्रामीण हैं। वह युग और परिवेश से कदम में कदम मिलाकर चलते हैं। वह अपने बेटे मार्कण्डेय को विलायत भेजकर पढ़ाने की इच्छा पाले थे। उसके कांग्रेसी हो जाने पर उन्हें कोई अफसोस नहीं होता। उसके जेल जाने का भी उन्हें कोई दु:ख नहीं है। अपने गांव के किसानों के हित के लिए, वह अपने प्रति तिवारी जी के सम्मान की उपेक्षा करके तिवारी जी की गलतियों को भुलाकर उनकी रक्षा के लिए अपने प्राण भी दे देते हैं।

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 142

2- वही- पृ० 143

`टेढ़े मेढ़े रास्ते` में गिनती के नारी-पात्र हैं किन्तु उनके माध्यम से वर्मा जी ने तत्कालीन समाज में नारी के दो भिन्न-भिन्न रूपों को प्रकाशित किया है। राजेश्वरी और लक्ष्मी उच्चवंश की भारतीय कुल-वधुएँ हैं, जो पति के अस्तित्व में ही अपने अस्तित्व को विलीन कर देने में विश्वास करती हैं। इनके विपरीत प्रतिभा और वीणा नारी की नवीन सामाजिक और राजनीतिक चेतना की प्रतीक बनकर आयी हैं। इन्होंने अपने भोग्या के रूप को पीछे छोड़ दिया है और पुरुषों से बराबर संघर्ष करते-करते वह दिखा देती है कि नारी को शारीरिक कोमलता और सुन्दरता के नाम पर हीन समझना मूर्खता है। हिल्डा एक प्रगतिशील पाश्चात्य नारी है। उसके विचारों और क्रियाकलापों की तुलना में वर्मा जी ने भारतीय नारी की श्रेष्ठता को स्थापित किया है।

इलाहाबाद के साहित्यकारों के विस्तृत चित्रण से साहित्यकारों के खोखलेपन का भी प्रसंगवश समावेश हो गया है। इस प्रकार `टेढ़े मेढ़े रास्ते` में वर्मा जी ने तत्कालीन भारत के विविध दृश्य प्रस्तुत किए हैं, किन्तु रामनाथ की प्रतिक्रियावादी विचारधारा और कम्यूनिज़्म की आलोचना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप डा० रांगेय राघव ने `सीधा सादा रास्ता` नामक उपन्यास लिख डाला और उसकी भूमिका में मार्क्सवादी लेखक डा० रामविलास शर्मा ने वर्मा जी की तीव्र आलोचना की, अत: इन दोनों उपन्यासों पर एक तुलनात्मक दृष्टि डाल लेना भी समीचीन लगता है।

<u>`टेढ़े मेढ़े रास्ते` और `सीधा सादा रास्ता`</u> :- डॉ० राघव ने यद्यपि अपने उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि उनका उपन्यास `टेढ़े मेढ़े रास्ते` का उत्तर नहीं है। वह लिखते हैं- `प्रस्तुत उपन्यास अपने ढंग की नई चीज़ है। मैंने श्री भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के आगे इसे लिखा है। मेरा उपन्यास अपने आप में स्वतंत्र है। इसका केवल एक सम्बंध अपने पूर्ववर्ती उपन्यास से है कि मेरे पात्र, उनकी परिस्थितियाँ, सामाजिक व्यवहार, घर, भूगोल, सम्पत्ति सब वही हैं जो `टेढ़े मेढ़े रास्ते` की कहानी है, वह सब गुजर चुका है। जब उसकी आवश्यकता पड़ती है तो वह चिन्तन बनता है, पूर्वस्मृति बनती है। --- मैं नहीं कह सकता कि मैंने पहले उपन्यास का उत्तर लिखा है। --- जैसा जो वर्मा जी का पात्र है, उसको मैंने वैसे ही लिया है, पर वर्मा जी ने चित्र का एक पहलू दिखाया है, मैंने दूसरा भी।`[1] डॉ० रांगेय राघव ने चित्र के दोनों पहलू को दिखलाकर एक `सीधा-सादा

1- सीधा सादा रास्ता- डॉ० रांगेय राघव-भूमिका।

रास्ता` दिखलाने का दावा किया है । और वह रास्ता है मानवतावाद का । किन्तु रांगेय राघव का सीधा सादा रास्ता, उनके विचारों से पूर्णरूपेण स्वतंत्र नहीं है । उनके रास्ते में राजाओं एवं ताल्लुकेदारों के लिए कोई जगह नहीं है, अत: उनकी सफाई के लिए उन पर दुर्निवार प्रहार किए गये हैं । सर्वप्रथम राघव जी रामनाथ के पूर्वज अमरनाथ और विलासनाथ के देशद्रोह और अंग्रेजों की सहायता से स्वार्थसाधन की कथा कहकर रामनाथ के परिवार के लिए घृणा की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं । तत्पश्चात् नवाब साहब अज़ीज़बहादुर, मिरजा बेग तथा शौगढ़ और पलासगाँव के राजाओं के मूर्खतापूर्ण करनामों के द्वारा उपन्यासकार ने सामंतवाद के विरुद्ध वातावरण तैयार करने का यत्न किया है । वव नवाब साहब अज़ीज़ बहादुर से सम्बंधी सम्पूर्ण कथा सामंतों के दिमाग के दिवालियेपन को चित्रित करने के के उद्देश्य से गढ़ी गयी है । नवाब के यहाँ मछली-मछले की शादी, दहेज का चोरी होना, खोजबीन में गाँव के एक आदमी की मौत, बेगमों और मिरजाबेग आदि का षड्यंत्र । नवाब को पागल करार देना और नवाब के खीज से मरे अनेक कारनामों से उनका पागल सिद्ध होवव जाना । नवाब और श्यामनाथ (टेढ़े मेढ़े रास्ते में श्यामनाथ अपने भतीजे प्रभानाथ की मृत्यु के सदमें के कारण पागल हो जव जाते हैं) का कलकत्ता भाग जाना और वहाँ अज़ीज़-बहादुर मिरजाबेग आदि की चरवि मौत और श्यामनाथ को जेल हो जाना आदि घटनाओं के द्वारा उपन्यासकार ने कथानक का निर्माण एए इस प्रकार किया है कि अज़ीज़ बहादुर सम्बंधी सम्पूर्ण कथानक सामंतवाद पर व्यंग्य करता प्रतीत होता है ।

`टेढ़े मेढ़े रास्ते` में रामनाथ को अहंकारी एवं हठधर्मी स्वभाव का दिखलाकर भी सच्चरित्र एवं ईमानदार व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु `सीधा सादा रास्ता` में रामनाथ में कुछ और विशेषताओं का समावेश हो गया है - वे कभी ऐश नहीं करते, `टेढ़े मेढ़े रास्ते` वाली सदाचारिता तो उनमें है किन्तु `सीधा सादा रास्ता` में दिखाया गया है कि वह सम्मान प्राप्त करने के लिए और ओहदा बनाए रखने के लिए खूब खर्च करते हैं । इस खर्च को गरीब प्रजा से नजर और लगान आदि लेकर पूरा किया जाता है । ऐसा नहीं है कि इसमें केवल सामंतवाद के लिए घृणा के बीज बोए गए हैं । स्वतंत्रता-आन्दोलन के समय देश के लिए कांग्रेसियों और क्रांतिकारियों के उत्साह और बलिदान की भावना, गाँव-गांव में व्याप्त गाँधी के आन्दोलन की चर्चा आदि के द्वारा तत्कालीन राजनीतिक वातावरण को महत्वपूर्ण स्थान इस उपन्यास में दिया गया है । विशेषरूप से नवाब और श्यामनाथ की यात्रा के बीच एक युवती के पति की सत्याग्रह आन्दोलन में मृत्यु और उस युवती का रोना पर्याप्त मार्मिक है । किन्तु `सीधा सादा रास्ता` में भी आन्दोलन

के शिथिल और देश के `थके` होने का उल्लेख किया गया है।[1] इस प्रकार रांगेय राघव के उपन्यास में भी चित्र के दो पक्ष हैं और `टेढ़े मेढ़े रास्ते` में भी चित्र के दोनों पहलू विद्यमान हैं। वर्मा जी ने भी `स्वतंत्रता प्राप्ति की अदम्य अभिलाषा` वाला पक्ष खूब चित्रित किया है - स्वतंत्रता पाने के लिए गाँव के काश्तकार[2], मजदूर, छोटे-बच्चे, कस्बे के प्रमुख, व्यापारी, वकील डॉक्टर आदि[3] सभी अपनी जान की परवाह किए बिना निहत्थी अवस्था में शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार से लोहा लेने को तैयार दिखते हैं। यह बात दूसरी है कि ब्रिटिश सरकार के हिमायती रामनाथ उन्हें मूर्ख समझते हैं, किन्तु वह भी अनुभव करते हैं कि लेकिन यह सब-- यह सब! इसमें है कुछ जरूर! इस उन्माद में, इस पागलपन में, ऐसी कोई बात जरूर है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जो अमीर-गरीब, बच्चे बूढ़े, सभी पर अपना अधिकार जमाए हुए हैं, जिससे मैं डर रहा हूँ, डिप्टी कमिश्नर डर रहा है, यह विश्वविजयी और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार डर रही है! आखिर यह क्या है -- क्यों है ?`[4] क्या इस छोटे- से गद्यांश में स्वतंत्रता की इच्छा करनेवालों का चित्र अपनी पूर्ण शक्तिमत्ता से स्पष्ट नहीं हो जाता। इसी प्रकार रामनाथ जब न चाहते हुए भी गाँधी जी की प्रशंसा कर बैठते हैं, तो वह अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। विरोधी द्वारा प्रशंसा का कितना महत्व होता है! यह बताने की आवश्यकता नहीं। अत: एक समीक्षक का आरोप -`टेढ़े मेढ़े रास्ते` को तत्कालीन सामाजिक उथल-पुथलों के प्रतिबिंब के रूप में देखें तो ज्ञात होगा कि वर्मा जी ने एक महान यथार्थ की उपेक्षा की है ऐसे यथार्थ की जो समाज की जान था। वैसे सन् 1932-33 के आसपास कांग्रेस में मत-मतान्तरों के होने पर भी उसमें अधिक शिथिलता नहीं आयी थी, जिसके कारण वह बिल्कुल दुर्बल और आदर्शहीन ज्ञात हो, जैसा कि वर्मा जी ने दिखाया है। दूसरी पार्टियों की भी यही दशा थी। पार्टियाँ कितनी ही शिथिल रही हों, उनमें कितने मतमतान्तर रहे हों, सबके रास्ते भिन्न-भिन्न रहे हों ; पर सबमें `स्वतंत्रता -प्राप्ति की एक अदम्य अभिलाषा थी, जो सब दुर्बलताओं पर विजय पाकर काम कर रही थी। जनता मूर्ख और अज्ञ रही हो, पर उसमें स्वतंत्रता का असीम आग्रह था, स्वाधीनता के लिए जान लड़ा देने का साहस था। ऐसा न होता, तो आज भारत का

1- सीधा सादा रास्ता- पृ० 88

2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 35

3- वही- पृ० 48-49

4- वही- पृ० 50

इतिहास ही कुछ और होता । इस महान जन-शक्ति की उपेक्षा वर्मा जी ने की है,पर रांगेय राघव ने इसे पहचाना है । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास प्रस्तुत करनेवाला कोई भी उपन्यास इस जन-शक्ति की उपेक्षा करे, तो यह उसके यथार्थवाद में एक बड़ा कलंक माना जायगा ।'[1] उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि वर्मा जी ने इस जन-शक्ति का विस्तृत चित्रण भले न किया हो, किन्तु उस जन-शक्ति की उपर्युक्त अभिलाषा के सम्बंध में कहे गए कुछ वाक्य बड़े प्रभावशाली एवं अभिव्यंजनापूर्ण हैं और पाठक की चेतना में बराबर गूँजा करते हैं ।

जहाँ तक 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में चित्रित तीनों पार्टियों के गुणावगुणों का प्रश्न है, वर्मा जी ने उनका बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है, वह उनका स्वानुभूत सत्य है और उसे उन्होंने बिना किसी दुराग्रह के व्यक्त किया है । वर्मा जी ने उन्हें 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' नाम दिया है, उससे उनका निराशावादी स्वर झलकता है । इस निराशा का भी एक कारण है । वर्मा जी का उपन्यास सन् 1946 में प्रकाशित हुआ, इसका मतलब है कि वह सन् 1945 तक पूर्ण हो चुका होगा, उस समय तक स्वतंत्रता-संग्राम का कोई निश्चित परिणाम नहीं आया था । आन्दोलन होते थे, उनका दमन किया जाता था और पार्टी के कार्यकर्ताओं में निराशा फैलती थी । इसे वर्मा जी ने चित्रित किया है । इसके विपरीत रांगेय राघव का उपन्यास सन् 1955 में प्रकाशित हुआ, जबकि स्वतंत्रता प्राप्त किए काफी समय बीत चुका था और आन्दोलन की निर्णय कारिणी शक्तियों का अनुमान करना अधिक सरल हो गया था । रांगेय जी ने स्वतंत्रता संग्राम का पूर्ण सिंहावलोकन करके अपनी कृति तैयार की है, इसलिए उसमें पूर्णता होना अधिक अपेक्षित है । उन्होंने सफल प्रयास किया है,इसमें सन्देह नहीं, किन्तु उनकी दृष्टि प्रतिक्रिया से निर्मित है, वह निरपेक्ष नहीं । उनका उपन्यास उनके विशिष्ट चिंतन से अप्रभावित नहीं रह पाया है जबकि वर्मा जी का 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' अधिक निरपेक्ष रचना है । डॉ० गणेशन का कथन द्रष्टव्य है -'प्राय: सभी आदर्शवादी पात्रों के मत लेखक के अपने मत होते हैं । इसी तरह 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के पात्रों में भी हम वर्मा जी के मत ढूँढ़ने लगें, तो लेखक के प्रति अन्याय होगा । इतने विभिन्न मतों की चर्चा करते हुए भी, उनके पारस्परिक संघर्षों को दिखाते हुए भी, वर्मा जी किसी का पक्ष लेते नहीं दीखते । निरपेक्षता की दृष्टि से यह एक उत्तम यथार्थवादी उपन्यास है ।'[2]

1- हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन- डॉ० गणेशन,पृ० 345

2- वही - पृ० 344

अंतत: यह कहा जा सकता है कि `टेढ़े मेढ़े रास्ते` वर्मा जी की प्रमुख कृतियों में से एक है, उसके नाम ने लोगों को अधिक भ्रम में डाला है। संभवत: इसी कारण वर्मा जी ने अपने एक अन्य उपन्यास का नाम `सीधी सच्ची बातें` रखा है यद्यपि उसमें भी स्वतंत्रता-पूर्व की गतिविधियों का लगभग वैसा ही चित्रण किया गया है, वरन् उसमें निराशा का स्वर और गहरा गया है।

<u>आखिरी दाँव :-</u> `आखिरी दाँव` सन् 1950 में प्रकाशित हुआ। वर्मा जी जब सिनारियो लेखक के रूप में बम्बई में थे, तब उन्होंने फिल्मी जीवन पर फिल्म के ही लिए एक कहानी लिखी थी; किन्तु बाद में फिल्म संसार से अरुचि हो जाने के कारण उन्होंने वह कहानी किसी को सुनायी नहीं और लखनऊ आने पर उसको उपन्यास-रूप में परिवर्तित कर दिया।[1] बम्बई के प्रवास काल में वर्मा जी को वहाँ के अर्थ-पिशाचों से साक्षात्कार करने का अवसर अवश्य मिला होगा और उनकी अर्थ-लिप्सा ने वर्मा जी की चेतना की तरंगों को तरंगायित कर दिया होगा, यह स्वाभाविक है। `आखिरी दाँव` में ऐसे ही अर्थ-लोलुपों का चित्रण किया गया है, जिन्होंने भोले-भाले ग्रामीणों की जीवन-धारा को ही बदल दिया। फिल्मी कथा के अनुरूप इस उपन्यास में नाटकीय स्थितियों की भरमार है और उसके लिए वर्मा जी का `नियतिवादी` और `परिस्थितियों के चक्र` वाला दर्शन विशेष सहायक हुआ है। रामेश्वर और चमेली को नियति ऐसी परिस्थितियों में डाल देती है, जहाँ से वह सही-सलामत निकल नहीं पाते। इन परिस्थितियों के निर्माण में निमित्त बनता है अर्थ। इस प्रकार नियति, परिस्थिति और अर्थ की नींव पर उपन्यासकार ने उपन्यास का ढाँचा खड़ा किया है।

रामेश्वर अपनी पैतृक सम्पत्ति जुए में हारकर बम्बई चला आता है और चमेली भी अपनी सास और पति के अत्याचारों से ऊबकर कुछ गहने और नकद रूपया चुराकर रतनू नामक युवक के साथ भागकर बम्बई चली आती है। चमेली को बम्बई लाकर रतनू उसे धोखा देता है, वह उसकी सारी सम्पत्ति खा-पीकर समाप्त कर देता है और चमेली के रूप का सौदा एक कामुक सेठ से करना चाहता है, किन्तु चमेली किसी तरह वहाँ से बचकर भाग निकलती है, परन्तु रूपवती नारी के दुश्मन तो सब जगह हैं। सेठ के चंगुल से बचकर वह पुलिस कांस्टेबल की कुत्सित दृष्टि का शिकार बनती है, किन्तु उसी समय रामेश्वर उसके

1- वर्मा जी के एक पत्र (दिनांक हीन) के आधार पर।

पति होने का नाटक रचकर उसकी रक्षा करता है और उसे अपने घर ले आता है । वे दोनों एक दूसरे से इतना प्रभावित होते हैं कि पति-पत्नी की तरह रहने लगते हैं । घर-गृहस्थी सुचारु-रूप से चलाने के लिए चमेली एक पान की दुकान खोल लेती है । धीरे-धीरे उसके रूप-यौवन से आकृष्ट होकर मनचले उधर आने लगते हैं । उनमें फिल्म-व्यवसायी सेठ शिवकुमार भी हैं । सेठ राधा नामक औरत , जो स्वयं तो अपना यौवन गँवा चुकी है किन्तु दूसरी भोली-भाली लड़कियों को फँसाया करती है, के माध्यम से चमेली को अपनाने के लिए षड्यंत्र रचता है, किन्तु चमेली और रामेश्वर उसे फटकार देते हैं । परन्तु अब परिस्थितियों का चक्र उन पर अपना जाल फेंकता है । शिवकुमार और राधा द्वारा चमेली को फुसलाये जाने पर रामेश्वर को यह भय हो जाता है कि कहीं चमेली उससे बिछुड़ न जाए अतः वह अपने मालिक के यहाँ से रुपये चुराकर सट्टा खेलता है और वह रकम हार जाता है ।उस समय रामेश्वर को बचाने के लिए चमेली सेठ शिवकुमार की शरण में जाती है और उसके बाद वह कभी वहाँ से निकल नहीं पाती । वह एक सफल अभिनेत्री के रूप में प्रसिद्ध होती है किन्तु अपना सतीत्व गँवा बैठती है । उधर रामेश्वर कुछ तो स्वयं की हीन-भावना के कारण और कुछ चमेली को फिल्मी जीवन के कीचड़ से निकालने की दृष्टि से दूध के धंधे की आड़ में शराब और जुए के अवैध धन्धों से रुपया कमाना प्रारम्भ करता है । एक प्रकार से दोनों दूर पड़ने लगते हैं किन्तु उनका प्रेम पूर्ववत् बना रहता है । इस पर भी 'नियति संतुष्ट नहीं होती । सेठ शिवकुमार, स्वयं तो चमेली को अपनी वासना-तृप्ति का साधन बनाता ~~है~~ ही है,एक अन्य उद्योगपति शीतलप्रसाद को चमेली के द्वारा फँसवाकर अपना फिल्म-व्यवसाय बढ़ाने का यत्न करता है । रामेश्वर को जब यह पता चलता है तो वह शीतलप्रसाद को पिस्तौल से आतंकित करके चमेली को घर ले आता है । चमेली रामेश्वर के इस रूप को देखकर डर जाती है, तब रामेश्वर वस्तुस्थिति का विश्लेषण इस प्रकार करता है -'चुप रह, मुझे अपनी बात पूरी कह लेने दे । हम सब पैसे के गुलाम हैं, धन हमारा ईश्वर है, हमारा अस्तित्व है । इस पैसे की दुनिया में न पाप है, न पुण्य है ; न प्रेम है न भावना है-जो कुछ है वह धन है । झूठ,अविश्वास,छल-कपट की दुनिया के हम लोग प्रधान नागरिक हैं, हम दोनों में किसी को किसी से कोई शिकायत न होनी चाहिए । जिसके पास पैसा है वह सब कुछ खरीद सकता है, रूप,यौवन,शरीर,आत्मा । सब बेच रहे हैं अपने को, धन के पिशाच के हाथों चमेली, हम दोनों भी अपने को उस पिशाच के हाथों बेच चुके हैं । अब मुझमें और ~~तुझमें~~ तुझमें कोई सम्बंध नहीं रह गया, रह भी नहीं सकता । अगर मैं तुझ पर कोई अधिकार समझता हूँ तो अपने को धोखा देता हूँ -- और इस धोखे की दुनिया को मैं आज

हमेशा के लिए नष्ट कर रहा हूँ। मुझे केवल इतना कहना है कि तू समर्थ है, तू स्वतंत्र है। नियति के हिलकोरों में बहते-बहते हम दोनों अनायास ही एक दिन साथ आ गए थे -- आज वह साथ छूट रहा है। तू फल-फूल, तू जिन्दगी में सफल बन, तू भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर। मैं भी यही करूंगा-- यही कर रहा हूँ।"[1] इस घटना के बाद शीतल प्रसाद रामेश्वर की जान का दुश्मन हो जाता है। वह रामेश्वर को अपने मार्ग से अलग कर देने के लिए उसके जूए के अड्डे की सूचना पुलिस को दे देता है। रामेश्वर को बचाने के प्रयास में चमेली शीतलप्रसाद की हत्या कर ब देती है। और कुरूप भविष्य को अपने समक्ष देखकर स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। रामेश्वर को जुए द्वारा रुपया कमाने की धुन चमेली को पूर्णरूपेण अपना बनाने के लिए ही चढ़ी थी, वह चाहता था कि खूब सारी सम्पत्ति एकत्रित करके चमेली को लेकर अपने गाँव लौट जाय किन्तु चमेली को दम तोड़ता देख वह हतप्रभ हो जाता है और पुलिस के समक्ष आत्म-समर्पण कर देता है - " ले चलिए सार्जेन्ट साहब -- आज मैं जिन्दगी का आखिरी दाँव हार चुका हूँ, ले चलिए।"[2]

'आखिरी दाँव' में फिल्म जगत से सम्बंधित अनेक समस्याओं को उठाया गया है। राधा फिल्म व्यवसाय के लिए युवतियों को फँसानेवाली दलालों का प्रतिनिधित्व करती है। किशोर एक गीतकार है जो अपनी कविता से तो किसी को प्रभावित नहीं कर पाता, अश्लील गीत बनाकर और दूसरों की जड़ खोदकर अपना काम निकालता है, किशोर के द्वारा युवकों के फिल्मी-जीवन में प्रवेश करने के मोह की ओर इंगित किया गया है। इसके अतिरिक्त शिवकुमार के वैवाहिक जीवन की कथा अनमेल विवाह की समस्या की ओर संकेत करती है। इस उपन्यास में बम्बई के गुण्डों, दुग्ध-व्यवसाय की आड़ में पलनेवाले अवैध धन्धों का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। समग्रतया उपन्यास फिल्मी जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देता है।

<u>अपने खिलौने</u> :-वर्मा जी का यह हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास सन् 1957 ई० में प्रकाशित हुआ था। वर्मा जी ने यह उपन्यास उच्चवर्गीय समाज के वैचित्र्यपूर्ण जीवन का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से लिखा है। भारत सरकार के सेक्रेटरी आई०सी०एस०आफिसर

1- आखिरी दाँव - पृ० 228-229

2- वही- पृ० 262

श्री जयदेव भारती के निर्देश पर दिल्ली के एक बड़े पूँजीपति का पुत्र और शौकिया कविता करनेवाला अशोक गुप्ता 'कलाभारती' नामक एक सांस्कृतिक संस्था खोल देता है। जहाँ बड़े बड़े पूँजीपति, ठेकेदार, सरकारी अफसर और उनकी पत्नियाँ कला-प्रेम की ओट में अपना फालतू समय बिताते हैं, रोमांस के लिए अवसर निकाल लेते हैं और स्वार्थसाधन के तरीके खोज लेते हैं। इस कलाभारती को केन्द्र बनाकर पूँजीपति धन कमाते हैं, उच्च-पदस्थ सरकारी अफसरों के बेकार रिश्तेदार व्यवसाय का हल खोज निकालते हैं और अभिजात वर्ग के लोग शौकिया अपनायी गयी कला का प्रदर्शन करके यश और धन अर्जित करते हैं।

यशनगर के राजकुमार वीरेश्वर प्रताप फ्रांसीसी दूतावास में भारतीय राजदूत के प्रथम सचिव हैं। वे अपने पिता के भूतपूर्व दीवान जयदेव भारती के पास आते हैं। उनके दिलफेंक और मौज मस्ती से भरे व्यक्तित्व के चुम्बकीय आकर्षण में अनेक युवतियों की प्रणय-गाथा उभरकर आती है। मीना भारती, जो कभी बचपन में युवराज के साथ खेली थी, अपने मंगेतर की उपेक्षा कर वीरेश्वर प्रताप की हो जाने का स्वप्न देखने लगती है और वीरेश्वर प्रताप तो प्रेम के खेल का बड़ा सधा हुआ खिलाड़ी है। वह मीना को देखकर कहता है -"अरे मीना- मी-ना-तुम! मैं सोच रहा था, कौन परी उतर आई मेरा स्वागत करने। रास्ते में इतने-इतने सुन्दर शकुन हुए, दाईं आँख फड़की, सफेद हंसों का झुंड मिला, कोयल की प्यारी-प्यारी मीठी कूक सुनने को मिली। मैं सोच रहा था कि कौन मिलने वाला है, मेरे जीवन में कौन-सी मधुरिमा आनेवाली है। मीना-- मेरी प्यारी, दुलारी-- मी--ना!"[1] ऐसी ही लुभावनी बातों से स्त्रियों को वश में करना युवराज के बाएँ हाथ का खेल है। ऐसी ही एक युवती है अन्नपूर्णा। वह अशोक गुप्ता की विधवा बुआ है और अपार सम्पत्ति की स्वामिनी है। वह तो वीरेश्वरप्रताप से इतनी प्रभावित होती है कि अपने प्रेमानुरागी रामप्रकाश के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी वीरेश्वरप्रताप के समक्ष विवाह का प्रस्ताव कर बैठती है और सबसे बढ़कर कैरा कोप्रल है जो अपने पत्नीभक्त पति पीतमकमल को त्यागकर वीरेश्वरप्रताप को अपना आराध्यदेव मानकर सुध-बुध खो बैठती है। इन युवतियों की निजी काम-विकृतियाँ तो इस प्रेम के ढोंग के लिए उत्तरदायी हैं ही, वीरेश्वरप्रताप का कौशल भी इन्हें भुलावे में डालता है। तीन-

---

1- अपने खिलौने- पृ० ᴅᴅᴅ 14

तीन युवतियों को वह एक साथ बहलाए रखता है और किसी को उसके फ्रांसीसी लड़की लिली से हुए प्रणय-सम्बंध का पता नहीं चलता है, अंत में बम्बई में लिली वीरेश्वरप्रताप को ढूँढ़ते हुए आती है तो सबकी आँखें खुल जाती हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'कला भारती' इस उपन्यास के विभिन्न सूत्रों का संचालन करती है। रामप्रकाश ज्ञानेश्वरी भारती का भतीजा है। बुआ तो उसके निकम्मेपन से बेहद नाराज रहती हैं, किन्तु वह फूफा का मुँहलगा है। संगीत में उसकी रुचि है और इसी के बहाने वह कलाभारती में घुस जाता है और उसकी पाँच सौ रुपये की नौकरी तय हो जाती है। अशोक गुप्ता कलाभारती के लिए साजो सामान खरीदते समय लम्बा मुनाफा कमाते हैं और मीना भारती युवराज के प्रेम से निराश होकर अपना स्वास्थ्य सुधारने की दृष्टि से कला-भारती के खर्च से विभिन्न नगरों की यात्रा करती हैं। कलाभारती ऐसी संस्था है, जिसमें गृहमंत्री भी आने में हिचकिचाते नहीं। वीरेश्वर प्रताप के चित्रों की प्रदर्शनी का उद्घाटन गृहमंत्री करते हैं और अपने मूर्खतापूर्ण भाषण से नेताओं की अज्ञानता का ढिंढोरा पीटते हैं। मीना, अन्नपूर्णा रामप्रकाश और दिलवर किशन 'जख्मी' कलाभारती की शाखाएँ खोलने के लिए लखनऊ पहुँचते हैं। उन्हें लखनऊ पहुँचाकर उपन्यासकार लखनऊ और बनारस के साहित्यकारों की मीठी चुटकी लेता है और लखनऊ की बटेरबाजी और पतंगबाजी से युक्त, नवाबी संस्कृति का जायजा भी पाठकों को दिलवा देता है। यहीं मीना आदि की भेंट रामकृष्णा शैदा से होती है। वह मीना को हीरोइन बनाने का लालच दिखाकर बम्बई चलने के लिए राजी कर लेता है। इस यात्रा में फिल्म प्रोड्यूसर रामास्वामी चेट्टियार और शैदा का कामुक और गैर-जिम्मेदार आचरण फिल्मी हस्तियों पर करारा व्यंग्य करता है। रामास्वामी अर्थ की पैशाचिक शक्ति का उद्घाटन भी कर देता है - 'सेक्रेटरी! - तो क्या कर लेगा? यहां सेक्रेटरी बिकते हैं- उनकी लड़कियाँ बिकती हैं, बड़े-बड़े मिनिस्टर तक बिकते हैं। दुनिया में कौन ऐसा है जो न बिक सके - कीमत चाहिए उसकी। यू रास्कल सैदा - बड़ा तगड़ा सौदा किया, एक लाख में एक सेक्रेटरी की लड़की -।'[1] फिल्म व्यवसाय में रुपये की शक्ति तो है ही, एक विचित्र आकर्षण भी है। नवयुवक और नव-युवतियां तो उस ओर आकृष्ट होती ही है, बड़ी-बड़ी विभूतियाँ भी उस आकर्षण से अपने को दूर नहीं रख पाते। 'जख्मी' कहता

1- अपने खिलौने- पृ० 171

है -" फिल्म-हीरोइनों की क्या इज्जत है, क्या रुतबा है ! देखिए न हमारे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री उनके साथ अपनी तस्वीरें खिंचवाते हैं, उनको अपने यहां दावतों पर बुलाते हैं।"[1]

उच्चवर्गीय समाज के छिछले प्रेम-व्यापारों के अतिरिक्त उनकी प्रदर्शनप्रियता की ओर भी दृष्टिपात किया गया है और साथ ही वीरेश्वरप्रताप के माध्याम से मिटती हुई सामन्तवादी व्यवस्था के अवशिष्ट चिन्हों को भी चित्रित कर दिया गया है। वीरेश्वर-प्रताप जमींदारी उन्मूलन और अपने अनाप-शनाप खर्चों के कारण आर्थिक तंगी में है और गृहमंत्री से अपनी पेंशन की सिफारिश करवाना चाहता है, दूसरी ओर अपने वैभव के प्रदर्शन के लिए दावत पर पाँच हजार रुपये खर्च कर डालता है। उधर मीना एक पार्टी में जाने के लिए सैकड़ों रुपये खर्च कर डालती है, गहने उधार लाती है और उसके पिता उसमें पूरा सहयोग देते हैं। वह अपनी मर्यादा का उल्लंघन करके कहते हैं -"और मीना तुमने अपनी ड्रेस का आर्डर दे दिया कि नहीं ! बड़ी शानदार पार्टी होगी। अच्छी-से-अच्छी ड्रेस होनी चाहिए तुम्हारी, बस तुम्हीं तुम दिखो। तुम प्रमुख अतिथि हो न।"[2] बेटी को आकर्षक बनकर सबको प्रभावित करने के लिए प्रेरित करना उच्चवर्ग की भोंड़ी मनोवृत्ति को अनावृत्त कर देता है। इस वर्ग की झूठी शान को बढ़ावा देने वालों के रूप में दिलवर किशन 'जख्मी' का अत्यंत स्वाभाविक और यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। जीवन के हर क्षेत्र में बेकार और निकम्मा सिद्ध होनेवाला 'जख्मी' वीरेश्वरप्रताप की चापलूसी करके कम-से-कम अपना पेट भरने की समस्या तो सुलझा ही लेता है। उसका एक-एक वाक्य खुशामद-भरा होता है और युवराज के अहं को संतुष्ट करता है। यहाँ तक कि वह युवराज की प्रशंसा में एक शेर भी बना डालता है -

'युवराज-- मेरे आका में कितनी बुलन्दी है,
जो आएँ मुकाबिल में वह तो सभी बौने हैं।'[3]

'जख्मी' के माध्यम से वर्मा जी ने बेकार, नकारा एवं चापलूस 'चमचों' को साकार कर दिया है, साथ ही मामूली साहित्यकारों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण भी कर दिया है।

1- अपने खिलौने- पृ० 159
2- वही- पृ० 66
3- वही- पृ० 198

उपन्यास की एक-एक घटना सम्पन्न अभिजात वर्ग की मनोवृत्तियों का उद्घाटन करती है। मीना वीरेश्वर प्रताप की पार्टी की मुख्य अतिथि बनने पर सैकड़ों रुपये पोशाक बनवाने पर खर्च कर देती है और बहुमूल्य आभूषण उधार लाती है। बाद में उधार लाए गए पन्ने के सेट को भेंट में पाकर वह अशोक को क्षमा कर देती है, जबकि कुछ समय पहले तक वह उसकी शक्ल तक देखना पसंद नहीं करती थी। इसके साथ अशोक का ईर्ष्याग्नि में जलकर मीना पर सेंट के साथ काडलिवर आइल छिड़क देना, मीना का जूता गायब कर कर देना, कृष्णन का जूता छू जाने पर अपने घनिष्ठ मित्र से अत्यंत क्रुद्ध हो जाना और नहाने के लिए घर चले जाना, मछली का तेल छिड़क दिए जाने पर मीना का सबकी उपेक्षा से अपमानित हो हिस्टीरिया से ग्रस्त हो जाना, अन्नपूर्णा का रामप्रकाश एवं अशोक आदि नवयुवकों के कान उमेठ देना आदि सभी घटनाएँ अत्यंत रोचक होने के साथ-साथ उच्चवर्ग वाले व्यक्तियों के 'लूस टेम्परामेन्ट' एवं असंतुलित होने की ओर संकेत करती हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास में आधुनिक उच्चवर्गीय युवक-युवतियों के सस्ते एवं स्वच्छंद रोमांस, प्रदर्शनप्रियता, युवतियों की अलंकार एवं प्रसाधन प्रियता, पूँजीपतियों की स्वार्थवृत्ति, उच्च पदस्थ राजकर्मचारियों की ~~रश्प~~ तफरीह, नेताओं द्वारा व्यस्तता का ढोंग एवं उनकी अज्ञानता, फिल्मी जीवन की विकृतियों एवं साहित्यकारों की दयनीय स्थिति को दृष्टिपथ में रखते हुए उपन्यासकार ने उन्मुक्त हास्य एवं सचोट व्यंग्य का सृजन किया है। हास्य-व्यंग्य के इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से गंभीरता और गहनता ढूँढ पाना असंभव है, किन्तु परोक्ष रूप से उच्चवर्गीय समाज की विभिन्न विकृतियों के प्रति लेखक की दुश्चिंता व्यक्त हुई है, जो पाठक को इस समाज की गुरु-गंभीर समस्याओं पर विचार करने के लिए विवश कर देती है। हास्य-व्यंग्य के साथ-साथ कथारस के समुचित संतुलन से उपन्यास अत्यंत रोचक बन गया है।

<u>भूले बिसरे चित्र</u> :- 'भूले बिसरे चित्र' सन् 1959 में प्रकाशित हुआ। यह वर्मा जी के वृहदकाय उपन्यासों में से एक है। सन् 1885 से सन् 1930 तक की विस्तृत कालावधि के फलक पर तत्कालीन जीवन की बहुरंगी झाँकी इस उपन्यास में अंकित की गयी है। भारतीय इतिहास में यह समय अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। मध्यवर्ग के उद्भव और विकास, संयुक्त परिवार-प्रथा के विघटन, पूँजीवाद के अभ्युदय, सामंतवाद के ह्रास एवं भारत की

राजनीतिक गतिविधियों की दृष्टि से यह समय युगान्तकारी रहा है और वर्मा जी ने इन बहुविध परिवर्तनों एवं बदले हुए जीवन-मूल्यों को ध्यान में रखते हुए इस उपन्यास के कथानक का सृजन किया है।

भारतीय जीवन की अनेकानेक संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के अंकन के लिए कायस्थ-जाति के एक परिवार को आधार रूप में चुनकर वर्मा जी ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। आजीविका के लिए मुख्य रूप से नौकरी पर अवलम्बित रहने के कारण इस जाति के लोगों को अपने घर से दूर विभिन्न क्षेत्रों में घूमने का अवसर प्राप्त होता था और उनका अनुभव-क्षेत्र विस्तृत हो जाता था, अतः इस परिवार की चार पीढ़ियों की कथा का माध्यम बनाकर वर्मा जी ने भारतवर्ष के अनेक नगरों-तहसीलों और गांवों में स्पंदित भारतीय जीवन के चित्रण का सफल प्रयास किया है। इन चार पीढ़ियों की पारिवारिक कथा इस उपन्यास की आधिकारिक कथा है, इसके साथ दो प्रासंगिक कथाएँ भी कथानक के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। पहली कथा है कहार जाति के घसीटे, उसकी पत्नी छिनकी और पुत्र भीखू की। घसीटे मुंशी शिवलाल के साथ कचहरी में काम करता है, और वे दोनों 'हमप्याला' भी हैं। छिनकी मुंशी शिवलाल के घर में नौकरानी है, किन्तु कुछ अपनी स्वामिभक्ति के कारण और कुछ शिवलाल से अपने अवैध सम्बंधों के कारण परिवार की अभिन्न सदस्या है, यहाँ तक शिवलाल मरते समय उसे ज्वाला की दूसरी 'पक्क 'मां' तक कह देते हैं, इसी प्रकार भीखू भी अंत तक इस परिवार का हर प्रकार से साथ निभाहता है। दूसरी कथा प्रभुदयाल, जैदेई और उनके पुत्र की है। प्रभुदयाल वणिक जाति का एक महाजन है। अपनी चालाकी और तिकड़मों से बड़ी लम्बी जमींदारी का स्वामी बन बैठा है और उसका पुत्र अपने इस जातिगत एवं पैतृक गुण से पूँजीपति बन जाता है। प्रभुदयाल की होशियारी और अपनी झूठी मानमर्यादा के कारण जमींदारी के असली स्वामी गजराजसिंह और बरजोरसिंह को क्रमशः अपनी जमींदारी एवं जान से हाथ धोना पड़ा। प्रभुदयाल भी बरजोरसिंह के द्वारा मारे जाते हैं, इस तरह ग्रामीण महाजनी का विकास सम्पन्न पूँजीपति की ओर होता है। इस प्रासंगिक कथा के द्वारा पूंजी के अभ्युदय एवं सामन्तवाद के पराभव की कथा वर्मा जी ने कही है।

मुंशी शिवलाल और उनके परिवार की तीन पीढ़ियों के विभिन्न सदस्य भारत के इतिहास में घटित अनेक परिवर्तनों को घटित होते हुए देखते हैं, उनका अनुभव करते हैं, उन्हें अपने ऊपर झेलते हैं और अपनी क्षमता के अनुसार उनमें सक्रिय सहयोग देते हैं।

मुंशी शिवलाल एक सामान्य अर्जीनवीस थे, किन्तु अपनी चाटुकारिता और तिकड़मों के बल पर वह अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदार बनवा देते हैं। मुंशी शिवलाल स्वयं तो विधुर हैं अत: अपने भाई राधेलाल के परिवार के साथ संयुक्त रूप से रहते हैं। उनके परिवार की मालकिन राधेलाल कीपत्नी है। राधेलाल बड़े काइयां आदमी हैं और उनके पुत्र एक-से-एक आवारा हैं। ज्वालाप्रसाद के नायब तहसीलदार नामजद हो जाने से पूरे परिवार में खुशी की लहर दौड़ जाती है क्योंकि संयुक्त परिवार की यह विशेषता होती है कि यदि उसका कोई सदस्य अपने परिवार के स्तर से उठकर आगे बढ़ जाता है, तो अन्य सदस्य भी उससे चिपककर अपनी उन्नति करना अपना अधिकार मान बैठते हैं। एकमेव राधेलाल भी इसी कारण ज्वालाप्रसाद की ऊँची नौकरी के कारण अधिक उत्साहित हो उठते हैं। घर की नौकरानी झिनकी को जब यह समाचार मिलता है तो वह ज्वालाप्रसाद की नवविवाहिता यमुना को अफसरी का महत्व बताते हुए समझाती है कि वह अपने पति के साथ जाकर अपनी गृहस्थी सम्भाले और संयुक्त परिवार के झमेले से छुटकारा पाये। यह सुनने पर राधेलाल की पत्नी कहती है -"काहे री झिनकी, बहू का का समझाय-बढ़ाय रही है ? यह कच्ची उमिर की बहू भला परदेस जाई ? हम मर गई हन का ? पंद्रह दिन के लिए हम ज्वाला के साथ जाय के सब-कुछ ठीक कर देव।"[1] किन्तु झिनकी उस घर में केवल नौकरानी ही नहीं थी। वह शिवलाल की सब सेवाओं के साथ पलंग-सेवा भी करती थी, अत: झिनकी की बात टाल पाना शिवलाल के लिए कठिन था। इसके अतिरिक्त उसकी निष्ठा एवं बुद्धि-चातुर्य भी शिवलाल को प्रभावित किए बिना नहीं रहता और झिनकी ज्वालाप्रसाद की पत्नी यमुना को ज्वालाप्रसाद के साथ भिजवाने की व्यवस्था कर देती है। इस प्रकार संयुक्त परिवार की कड़ी प्रथम बार अलग होती है। कुछ दिन पश्चात् शिवलाल भी झिनकी के साथ घाटमपुर पहुँच जाते हैं।

परन्तु राधेलाल इससे निरुत्साहित नहीं होते। धीरे-धीरे वह अपने बेटों सहित ज्वालाप्रसाद के पास पहुँच जाते हैं। राधेलाल शिवलाल के साथ विभिन्न योजनाएँ बनाकर ज्वालाप्रसाद को जमीन-जायदाद इकट्ठा करने के लिए प्रेरित करते हैं, परन्तु ज्वालाप्रसाद को अपने पिता और चाचा का जाल-फरेब पसंद नहीं आता। ज्वालाप्रसाद के विरोध के परिणामस्वरूप शिवलाल आत्महत्या कर लेते हैं। तदुपरांत ज्वालाप्रसाद अपने चचेरे भाइयों की चालबाजियों एवं निकम्मेपन की नित-नवीन वारदातों से ऊबकर उन्हें ईमानदारी से काम करने की सलाह देते हैं। वह अपने चाचा से कहते हैं -"मैंने जो कुछ आप लोगों से कहा है, वह आप लोगों के हित में है और अपने हित में कहा है। लड़कों से कहिए कि

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 11

ईमानदार बनें और मेहनत करें । उनकी ईमानदारी और मेहनत में मैं इन्हें हर तरह की मदद करने को तैयार हूँ । मेरे साथ रहकर ये सब लोग आवारा, कामचोर, बेईमान और लुटेरे बन रहे हैं । आखिर इनकी जिन्दगी सुधारना आपका कर्तव्य है ।'[1] यह 'आप' अपने और 'अपने' की द्वैध-भावना ही संयुक्त परिवार के विघटन का मूल कारण रही है ।यहीं से अपने पैरों पर, अपनी योग्यता एवं परिश्रम से उत्थान की ओर बढ़ने वाले मध्यमवर्ग की कहानी प्रारम्भ होती है और संयुक्त परिवार में दूसरों के भरोसे पनपने वाले अक्षम व्यक्ति पीछे छूट जाते हैं ।

अब ज्वालाप्रसाद का दायित्व केवल अपने विभक्त परिवार तक ही सीमित रह जाता है और उनका कुछ बोझ जैदेई हल्का कर देती है । प्रभुदयाल की मृत्यु के पश्चात् एक दिन ज्वालाप्रसाद और जैदेई प्रेमावेश में एक दूसरे के अभिन्न हो जाते हैं और तभी से जैदेई ज्वालाप्रसाद के घर की शुभैषिणी बन जाती है । अत: जब गंगाप्रसाद कुछ बड़ा होता है तो वह उसकी शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लेती है । वह होनहार गंगाप्रसाद की हर सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए उसे उच्च शिक्षा दिलवाती है ।

गंगाप्रसाद जैदेई के पास रहकर, रईसी ठाटबाट में अपने आकर्षक एवं वर्चस्वी व्यक्तित्व का निर्माण करता है और अपनी योग्यता, ज्वालाप्रसाद की खुशामद एवं लक्ष्मीचंद की सिफारिश के समन्वित प्रभाव से डिप्टी कलक्टर बन जाता है । निम्न मध्यवर्गीय हैसियत के अर्जीनवीस मुंशी शिवलाल का परिवार बड़ी तेजी के साथ प्रगति के पथ पर बढ़ता जाता है । विशेषकर लक्ष्मीचंद जैसे पूँजीपति का साथ होने के कारण उसके परिवार को अनपेक्षित सम्मान एवं सुविधाएँ प्राप्त होती हैं । गंगाप्रसाद अपने उन्मुक्त, दबंग एवं रोबीले स्वभाव के कारण नौकरशाही का ज्वलंत उदाहरण बन जाता है । एक सरकारी अफसर के रूप में उसे पर्याप्त सफलता मिलती है, किन्तु अतिरिक्त सुख-सुविधाएँ उसे भोग-विलास की ओर खींच ले जाती हैं । वह मदिरा-सेवन तो करता ही है, स्त्रियाँ भी उसकी दुर्बलता बन जाती हैं । पहले वह अतृप्त काम-वासना से पीड़ित संतो को अपनी वासना का शिकार बनाता है और इसके बाद वेश्या मलका से उसका सम्बंध होता है । मलका अपने पंकिल जीवन से उबरकर उसकी बन जाना चाहती है, किन्तु यहाँ मध्यवर्गीय

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 229

संस्कार गंगाप्रसाद के पैरों की बेड़ियाँ बन जाते हैं। वह अपने मित्र अलीरजा से कहता है - 'अलीरजा साहब, आपको मैं यह बतला दूँ कि उसके रुपयों से मुझे कोई मोह नहीं है। मैं तो उसकी मुहब्बत का कायल हूँ। मैं जानता हूँ कि अब वह कोठे पर नहीं बैठेगी, लेकिन आप ही समझिए कि मेरा खानदान है, मेरी इज्जत है।'[1] लेकिन सुरा-सुन्दरी के जाल में फँसकर गंगाप्रसाद उसमें डूबता ही जाता है। मलका तो उससे छूट जाती है उसके स्थानान्तरण के कारण, किन्तु मदिरा उसे ले डूबती है। ये दुर्व्यसन उसे अपने पारिवारिक कर्तव्यों को भी पूरा नहीं करने देते। अंत में अंग्रेजों की रंगभेद -नीति के कारण उसे बहुत सदमा पहुँचता है। मदिरा के आधिक्य से उसे यक्ष्मा हो जाता है। और चारों तरफ की असफलता उसे मृत्यु के द्वार तक पहुँचा देती है। वह मरते समय अपने पुत्र नवल से कहता है -'एक दिन मैंने अपनी नौकरी, गुलामी और विवशता से विद्रोह किया था। मेरे अन्दर वाला वह विद्रोह वास्तविक था। ज्ञान चाचा जानते हैं इस बात को। मैंने यह तय कर लिया था कि मैं इस्तीफा दे दूँगा। लेकिन अनायास ही मेरे अन्दर वाली कायरता को एक छोटा-सा सहारा मिल गया, और मेरी कायरता मुझ पर चढ़ बैठी। मैंने अपना वह इस्तीफा फाड़ डाला था और अपमान का जहर पी लिया था मैंने। लेकिन वह अपमान का जहर कितना कड़वा था, और वह जहर कितना धीमा और घातक था। मैं उसी समय टूट गया था जब मैंने अपना इस्तीफा फाड़ डाला था। पिछले आठ-दस साल मैं केवल घिसटता रहा हूँ। अब उसका भी अन्त आनेवाला है, और आज मैं खुश हूँ।'[2] देश और काल की धारा के विपरीत बहने की कितनी बड़ी सजा गंगाप्रसाद ने भोगी थी - यह कथन उसका प्रमाण है। इसलिए जिन लोगों ने वर्मा जी पर यह आरोप लगाया है कि उनके उपन्यासों में स्वतंत्रता-संग्राम के उत्साह और राष्ट्र-चेतना की तीव्रता का प्रतिबिम्बन नहीं हुआ है, वह असत्य है। एक०इ०वेवव०शवे००शवे००कुछ०धिव०हो०रही०थी उस०समय०देश उस समय देश वासियों में राष्ट्र चेतना की शनैः शनैः स्फुरित हो रही थी और उसका अत्यंत यथार्थ अंकन वर्मा जी ने किया है।

गंगाप्रसाद के पुत्र पर ज्ञानप्रकाश की प्रेरणा और पिता की इस स्वीकारोक्ति का इतना प्रभाव पड़ता है कि वह रायबहादुर कामतानाथ की पुत्री के साथ विवाह करने

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 459

2- वही- पृ० 594

तथा इंग्लैण्ड जाकर आई०सी०एस० बनने के प्रलोभनों को ठुकराकर स्वतंत्रता -संग्राम में सक्रिय भाग लेकर जेल चला जाता है । इस प्रकार शिवलाल के मध्यवर्गीय परिवार का निरंतर उन्नयन होता है विशेषकर नवलकिशोर के नैतिक और चारित्रिक उत्थान के रूप में ।

यहाँ विशेषरूप से उल्लेख्य है कि 'भूले बिसरे चित्र' में शिवलाल के परिवार को अवैध प्रणय-सम्बंध पैतृक संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ है । शिवलाल की पत्नी नहीं थी, इसलिए वह झिनकी से सम्बंध स्थापित करते हैं, किन्तु उनके घर में नौकरानी होकर भी स्वामिनी की भाँति रहती है । ज्वालाप्रसाद पत्नी के रहते हुए भी विशिष्ट स्थितियों में जैदेई को अपनाते हैं किन्तु उनका अवैध सम्बंध कभी शिष्टता की सीमा का अतिक्रमण नहीं करता । परन्तु गंगाप्रसाद ने उस सीमा का उल्लंघन किया और उसके परिवार पर दुख के बादल मँडराने लगे । एक समय ऐसा अवश्य था जब बड़े-बड़े रईसों में रखैलें रखना अथवा वेश्याओं के यहाँ जाना सामान्य मनोवृत्ति थी किन्तु सामन्तशाही के पतन के साथ इस मनोवृत्ति का भी लोप हो गया । वर्मा जी ने इस मनोवृत्ति का चित्रण करके भी उसके प्रति अपनी वितृष्णा व्यक्त कर दी है । गंगाप्रसाद की बरबादी दिखलाने के पीछे उनका यही उद्देश्य परिलक्षित होता है ।

उपर्युक्त प्रमुख कथा एवं प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त 'भूले बिसरे चित्र' में अनेक ऐसे छोटे-बड़े प्रसंग है जिनसे तत्कालीन भारतीय जीवन के विभिन्न पक्ष प्रकाशित हुए हैं । इन प्रसंगों के माध्यम से चाटुकारिता, रिश्वतखोरी, कर्ज, कामाचार, मिथ्या प्रदर्शन, संयुक्त परिवारों के अत्याचार, दहेज, तलाक, स्त्री-स्वातंत्र्य, शिक्षा व आत्म निर्भरता, छुआछूत एवं वर्णव्यवस्था सम्बंधी अनेक समस्याओं का समावेश वर्मा जी ने अपने इस वृहद् उपन्यास में कर लिया है । श्यामलाल की पत्नी हिन्दू समाज में नारी -यंत्रणा की मार्मिक कथा प्रस्तुत करती है । जैदेई के प्रसंग से विधवाओं की समस्याओं का एक पक्ष उभरकर पाठक के समक्ष आ जाता है । नवल की बहन विद्या के विवाह द्वारा दहेज की समस्या एवं नारी-उत्पीड़न का उद्घाटन हो जाता है । विद्या का अपने श्वसुर की पनही-पूजा करने के लिए तत्पर होना तथा श्वसुर गृह-त्याग के पश्चात् जीविकोपार्जन के प्रयत्न नारी विद्रोह एवं जागरण को चित्रित करते हैं । गंगाप्रसाद की प्रेमिका मलका के द्वारा वेश्या-समस्या को भी उठाया गया है । मीर जाफर अली, अल्लामा वहशी, जटिलानंद एवं डिप्टी अब्दुलहक से सम्बंधित प्रसंगों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता एवं उनको

प्रोत्साहन देने वाले तत्वों का वर्णन भी किया गया है। दिल्ली दरबार तथा उसमें आने वाले राजाओं के माध्यम से सामंती विलासिता एवं फिजूलखर्ची पर भी प्रकाश डाला गया है। महाराज और महारानी विजयपुर, राणा प्रतापजंग शमशेर, राजा सत्यजित प्रसन्न सिंह सामंतवाद के अवशिष्ट चिन्ह हैं, किन्तु लाल रिपुदमनसिंह इस वर्ग के विकासोन्मुख, सच्चरित्र एवं विवेकी नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उपन्यास के तीसरे खण्ड में दिल्ली दरबार से प्रारम्भ कर एवं नमक कानून के भंग से समाप्त करके भारत की राजनीतिक स्थिति का अंकन भी वर्मा जी ने इस उपन्यास में किया है, जिसका विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में किया जायेगा।

वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की ही भाँति 'भूले बिसरे चित्र' में भी मानव को परिस्थितियों का दास और नियंता के हाथ की कठपुतली बनाकर उपस्थित किया गया है। इस दुनिया में जो कुछ भी हो रहा है, वह सब 'भगवान की लीला' है। परिस्थितियों के साथ मनुष्य की आंतरिक प्रवृत्तियाँ उभरती हैं और मनुष्य विवश-सा उनके साथ बहता जाता है। इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए लाल रिपुदमनसिंह कहता है - 'परिस्थिति और आधारभूत व्यक्तित्व। बाबू गंगाप्रसाद, आधारभूत व्यक्तित्व में देवता होता है, दानव होता है। नेकी और बदी, क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में हर एक व्यक्तित्व के भाग हैं। अन्तर इतना है कि यह आधारभूत व्यक्तित्व परिस्थिति के अनुसार अपने को प्रकट करता है। व्यक्ति की आधारभूत प्रवृत्तियाँ विशेष परिस्थितियों में उभरेंगी ही ----- आदमी कुछ नहीं करता, जो कुछ करवाती हैं वे परिस्थितियाँ ही कराती हैं।'[1] परिस्थिति और मनुष्य के व्यक्तिगत स्वभाव को अत्यधिक महत्व प्रदान करने के कारण ही वर्मा जी दुश्चरित्रता एवं अनैतिक सम्बंधों को भी क्षम्य घोषित कर देते हैं। इसी प्रकार वर्मा जी ने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति 'भूले बिसरे चित्र' में अर्थ के विशेष महत्व का प्रतिपादन भी किया है। रिपुदमनसिंह इस सम्बंध में कहता है - 'जिस जगह तुम हो, वहाँ हर चीज़ बिकती है -दीन,ईमान,सत्य,चरित्र। यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब -कुछ बिकता है।'[2]

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 359

2- वही- पृ० 307

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने `भूले बिसरे चित्र` में देश का विस्तृत इतिहास विभिन्न छोटी-बड़ी रोचक कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और उसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है। वर्मा जी के इस उपन्यास ने इतनी ख्याति अर्जित की है कि इस उपन्यास का अनुवाद बरमीज़, तिब्बती, जापानी, रशियन व अन्य भारतीय भाषाओं में हो चुका है।[1]

वह फिर नहीं आई :- यह वर्मा जी का एक अत्यंत लघु उपन्यास है, जो उनकी इसी नाम से प्रकाशित एक लम्बी कहानी को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में एक शरणार्थी दम्पति की कहानी है। `शरणार्थी समस्या हमारे देश की नहीं, आज के उजड़ने और नये सिरे से बसने के युग में समस्त मानव-समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या है - रक्त और आँसुओं से भीगी हुई, आहों से धुँधली पड़ी हुई, पशुता और दानवता के नग्न रूप को प्रदर्शित करती हुई।'[2] तथापि जीवन की समस्त भोग-लिप्सा, छल-कपट और अमानुषिकता के होते हुए भी ममता का सम्बल ही जीवन-नौका के लिए महान आशा है। भावना और ममता की प्रेरणा से ओतप्रोत इस लघु-उपन्यास का प्रतिपाद्य यही है।

रावलपिण्डी के राजा खुशीराम का पुत्र जीवनराम और उसकी पत्नी रानी श्यामला भारत और पाकिस्तान के बटवारे के कारण अपने समस्त धन-वैभव से हाथ धो बैठते हैं। जीवनराम के बचपन का साथी शहबाज जीवनराम को शरण दे देता है किन्तु अपनी बदनीयत के कारण। साम्प्रदायिकता की लपटों से धधकते रोमांचकारी वातावरण से जीवनराम को निकालने के लिए वह बहुत बड़ी कीमत जीवनराम से माँगता है। शहबाज कहता है कि वह जीवनराम को तो सही-सलामत निकाल देगा किन्तु जीवनराम श्यामला को 20 हजार रुपया देकर ही छुड़ा सकेगा। शहबाज जानता है कि शान-शौकत और ऐशो-आराम में पलनेवाला जीवनराम इतना लापरवाह और निकम्मा है कि वह 20 हजार रुपया कभी प्राप्त नहीं कर सकता। न वह रुपये ला पायेगा और न श्यामला को ले जा सकेगा, अतः श्यामला उसकी हो जायेगी। जीवनराम वहाँ से भारत आ जाता है - रुपया कमाने, और श्यामला उससे बहुत दूर रावलपिण्डी में ही रह जाती है। एक-दूसरे को जान से

1- महारानी लाल कुंवरि महाविद्यालय, बलरामपुर पत्रिका दीक्षांत समारोह अंक सन् 1971-72 से उद्धृत।

2- वह फिर नहीं आई- पृ० 24

अधिक चाहनेवाले दम्पति एक मनुष्य की पशुता का शिकार बनकर अलग हो जाते हैं। यद्यपि उनकी आत्मा जीवन-पर्यन्त निकट ही रहती है, किन्तु वे स्वयं बार-बार मिलते बिछुड़ते हैं। जीवनराम भारत में आकर अपने एक लखपति रिश्तेदार के यहाँ नौकरी कर लेता है किन्तु उसे श्यामला का मोह इतना व्यथित करता है कि वह बीस हजार रुपये का गबन करता है और रुपये लेकर श्यामला को छुड़ाने पहुँचता है। उधर श्यामला जीवनराम के चले जाने पर बहुत रोयी-चिल्लायी थी, किन्तु धीरे-धीरे शहबाज के सेवा-सुश्रुषा एवं क्षमा-याचना से उसका क्रोध कम होने लगा। छ: महीने तक उसने जीवनराम की प्रतीक्षा की, किन्तु उसके बाद एक दिन वह शहबाज की हो गयी। जीवनराम रुपया लेकर जब शहबाज के पास पहुँचता है, तो श्यामला उसे अपनी सारी कहानी सुनाती है। जीवनराम को एक धक्का-सा तो लगता है, किन्तु श्यामला के प्रति असीम प्रेम होने के कारण वह उसे लेकर बम्बई वापस आ जाता है। गबन के कारण उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ता है। अत: श्यामला अपना शरीर बेचकर रुपया इकट्ठा करना प्रारम्भ कर देती है, किन्तु उसकी आत्मा उसका साथ नहीं देती। इसी बीच श्यामला का परिचय कानपुर के एक प्रसिद्ध एवं धनी व्यापारी ज्ञानचन्द से होता है। ज्ञानचन्द श्यामला के रूप और यौवन की ओर आकृष्ट हो उठता है। श्यामला ज्ञानचन्द से जीवनराम का परिचय अपने एक रिश्तेदार के रूप में करवाती है और ज्ञानचन्द के साथ आकर रहने लगती है। ज्ञानचन्द जीवनराम को अपने दफ्तर में अपने सहायक के रूप में नियुक्त कर देते हैं और स्वयं श्यामला के साथ घूमने निकल पड़ते हैं। पहले गबन के रुपयों को चुकाने के लिए जीवनराम दुबारा ज्ञानचन्द के यहाँ से गबन करता है। ज्ञानचन्द पुलिस में रिपोर्ट करके उसे पकड़ाना चाहते हैं तो जीवनराम कहता है -"ज्ञानचन्द जी, आप पुलिस में रिपोर्ट न कीजिए, यही अच्छा होगा। मेरी पत्नी के साथ आप व्यभिचार करते रहे हैं, इस बात का मुकदमा मैं पुलिस में दायर कर सकता हूँ। ----- आपने इसके साथ ऐश किया है, इसका सबूत मेरे पास है। आपने मेरी पत्नी ली, मैंने आपका रुपया लिया, हिसाब-किताब बराबर हो गया।"[1] किन्तु ज्ञानचन्द समर्थ है, कानून उनके इशारे पर चलता है। अत: वह श्यामला के रोने-चिल्लाने पर भी जीवनराम को गिरफ्तार करवा देते हैं, परन्तु दूसरे ही दिन श्यामला द्वारा बहुत खुशामद करने पर वह उसे छुड़वा देते हैं। जीवनराम को जब श्यामला के रोने-गिड़गिड़ाने की बात पता चलती है तो वह ज्ञानचन्द्र से कहता है -ज्ञानचन्द्र जी,

---

1- वह फिर नहीं आई- पृ० 42

मैं आपकी भीख नहीं चाहता । मैं दुनिया में किसी की दया और करुणा नहीं चाहता । मैं कहता हूँ कि मैं आपका रुपया वापस करके ही अपनी पत्नी को आपसे वापस लूँगा, तब तक नहीं । मैं जाता हूँ, और मैं वादा करता हूँ कि मैं आपका रुपया लेकर जल्दी ही वापस लौटूँगा ।"[1] जीवनराम जाता भी है किन्तु कुछ दिन बाद बेतरह थका हुआ वापस आ जाता है । वह रुपया इकट्ठा नहीं कर पाता इसलिए श्यामला को ज्ञानचन्द के आसरे छोड़कर चिरनिद्रा में सो जाता है । श्यामला को जीवनराम की मृत्यु से इतना धक्का लगता है कि वह अर्द्धविक्षिप्त सी हो जाती है, परन्तु धीरे-धीरे वह ज्ञानचन्द से आत्मीयता का अनुभव करने लगती है और भोग-विलास की ओर आकृष्ट होने लगती है लेकिन ज्ञानचन्द और भोगविलास का मोहपाश उसे अधिक दिन तक बांधे नहीं रख पाता और वह ज्ञानचन्द को छोड़कर चली जाती है, उसी यात्रा पर जिस पर पहले जीवनराम गया था । वह पुन: अपने शरीर का व्यापार करके रुपया कमाने लगती है और एक दिन बहुमूल्य आभूषणों से सजी बीस हजार रुपया लेकर ज्ञानचन्द के पास पहुँचती है । वह रुपया अदा करके जीवनराम के कर्ज से मुक्त हो जाना चाहती है । जीवनराम का वियोग उसके मन में समाज के प्रति एक आक्रोश और प्रतिक्रिया भर जाता है और लोगों की जिन्दगी नष्ट करके उस समाज से बदला लेती घूमती है । वह ज्ञानचन्द से कहती है -"कटुता ! ज्ञानचन्द जी, आज कई वर्षों से दुनिया ने मुझे कटुता के घूँट ही तो पिलाये हैं, फिर भला मुझमें कोमलता कैसे हो ? लोग मेरा शरीर पाना चाहते हैं । मेरी आत्मा की तरफ भी कभी किसी ने देखा है ? कितना बड़ा अभाव है मेरे जीवन में, कितना सूनापन है मेरे प्राणों में ---- काश लोग-बाग यह देख सकते तो वे मुझसे दूर भागते । मेरे प्राण भोग-विलास के भूखे नहीं हैं, उन्हें भूख है ममता की, हमदर्दी की । लेकिन सब अपने में गर्क हैं, अपना सुख चाहते हैं, अपने को संतुष्ट करते हैं । ऐसी हालत में अगर मुझमें ब कटुता आ गई है तो ताज्जुब क्या है ? --- मैं अपनी कटुता को बड़े मजे में छिपा लेती हूँ, जिस समय मेरे प्राण रोते हैं, मेरे होठों पर हँसी रहती है ।----- लेकिन इस सबमें मुझे अब तकलीफ नहीं होती । जीवनराम की खोने की तकलीफ सह चुकी हूँ न ।"[2] इस कथन से स्पष्ट है कि श्यामला जीवनराम की ममता को जीवन-पर्यन्त कभी भुला नहीं सकती ।

श्यामला की भावना का अनुभव कर ज्ञानचन्द बहुत दुखी होते हैं और रुपया सुरक्षित रख देते हैं । वह जानते हैं कि एक समय आयेगा जब श्यामला अपना रूप-यौवन

1- वह फिर नहीं आई- पृ० 71-72

2- वही- पृ० 109

गँवाकर पैसे-पैसे की मोहताज हो जायगी । उस समय यह रुपया उसके काम आएगा ।

इस प्रकार इस लघु उपन्यास में वर्मा जी ने नैतिकता के पुराने मानदण्डों को छोड़कर नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । उनकी दृष्टि में मन की पवित्रता के सम्मुख शरीर की पवित्रता-अपवित्रता का विशेष महत्व नहीं है । इसके अतिरिक्त जीवन में अर्थ की महत्ता एवं विस्थापितों की समस्या को भी एक दम्पति की करुण कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

सामर्थ्य और सीमा :- 'सामर्थ्य और सीमा' का प्रकाशन काल सन् 1962 ई० है । पहले लक्ष्य किया जा चुका है कि वर्मा जी की अटूट आस्था 'नियतिवाद' में रही है और वह उत्तरोत्तर सघन होती गयी है । प्रस्तुत उपन्यास का सम्पूर्ण कलेवर नियति के व्यापक प्रभाव को प्रदर्शित करने की दृष्टि से निर्मित हुआ है । इस उपन्यास के माध्यम से वर्मा जी ने मनुष्य की सामर्थ्य और सीमा को मापने का यत्न किया है । उनका विचार है कि मनुष्य की सामर्थ्य और सीमा 'नियति' से परिचालित है । जब तक नियति और प्रकृति की सहमति रहती है, मनुष्य उसके साथ खिलवाड़ करके गर्वोन्नत बना रहता है और अपनी सामर्थ्य ब पर फूला नहीं समाता किन्तु जैसे ही कालचक्र विपरीत होता है, प्रकृति अपनी दृष्टि फेरती है- मनुष्य का अहंकार धूल-धूसरित हो जाता है । वह अखंड अपरिमित प्रकृति के समक्ष घुटने टेकने के लिए विवश हो जाता है । निर्बल निःसहाय होकर नियंता से अपनी सुरक्षा की भीख माँगने लगता है ।

उपन्यास का प्रारम्भ हिमालय की तराई के घने जंगलों के बीच बने एक छोटे -से स्टेशन सुमना से होता है । उत्तर प्रदेश के डेवलपमेण्ट मिनिस्टर जोखनलाल ने सुमनपुर खण्ड के विकास और प्रचार-प्रसार के लिए देश के विभिन्न ख्यातनाम व्यक्तियों को आमंत्रित किया है । रतनचन्द्र मकोला भारत के शीर्षस्थ पूँजीपति हैं, जिनका कार्यक्षेत्र भारत के अतिरिक्त दुनिया के विभिन्न देशों में फैला हुआ है । इनकी सहायता से जोखनलाल अपनी योजना को सफल बनाना चाहते हैं । वासुदेव चिन्तामणि देवलंकर विश्वविख्यात इंजीनियर है और काफी समय तक विदेश में रहकर अपनी इंजीनियरिंग कला की धाक जमा चुके हैं किन्तु भारत के स्वतंत्र होने पर अपनी देश सेवा की भावना से प्रेरित होकर भारत आ जाते हैं । जोखनलाल सुमनपुर की रोहिणी नदी पर बाँध बाँधने के लिए देवलंकर को बुला लेते हैं । ज्ञानेश्वर राव सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं तथा प्रधानमंत्री के सलाहकार हैं । जोखनलाल ने सुमनपुर विकास-योजना के व्यापक प्रचार के लिए ज्ञानेश्वर राव को आमंत्रित किया है । पंडित शिवानन्द शर्मा

सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उन्हें सुमनपुर के प्राकृतिक सौन्दर्य के अवलोकनार्थ बुलाया गया है ताकि वह इस उपेक्षित खण्ड के अनुपम लावण्य का मनोहारी एवं अतिरंजित चित्र प्रस्तुत कर लोगों को प्रभावित कर सकें। एलबर्ट किशन मयूर सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सरताज कलाकार हैं और बड़े-बड़े नगरों की प्लानिंग का कार्य उनके बिना अधूरा समझा जाता है, अतः उन्हें सुमनपुर की सुन्दर प्लानिंग के लिए आमंत्रित किया गया है।

रानी मानकुमारी सुमनपुर के पास की रियासत यशनगर के भूतपूर्व राजा स्वर्गीय शमशेरबहादुरसिंह की पत्नी एवं मेजर नाहरसिंह उनके चाचा है। राजा शमशेरबहादुरसिंह एक योग्य एवं दूरदर्शी शासक थे अतः उन्होंने बहुत पहले ही सुमनपुर के औद्योगिक विकास की योजना बनायी थी, परन्तु मेजर नाहरसिंह ने उन्हें उसी समय निरुत्साहित किया था -'सुमनपुर को जो आप बसा रहे हैं, उससे यशनगर नष्ट हो जायगा। भविष्य में यशनगर के खण्डहर भी लोगों को ढूँढे न मिलेंगे। लेकिन छोटे राजा, नियति के क्रम को रोक सकने की सामर्थ्य किसमें है? यशनगर नष्ट होकर रहेगा और यशनगर के मिटने के साथ गुम्फित ठाकुरों का यह राजवंश भी सदा के लिए मिट जायेगा।'[1] नाहरसिंह के विषय में प्रसिद्ध था कि उनके जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं जब वह जो कुछ भी कह देते हैं वह सत्य होकर ही रहता है। अपने चाचा की यह भविष्यवाणी सुनकर शमशेरसिंह भयभीत हो उठते हैं। इसी बीच 'जमींदारी उन्मूलन' के कारण भी उनकी योजना पूरी नहीं हो पाती और वह अपनी नकद सम्पत्ति लेकर विदेश चले जाते हैं। वहीं उनकी मृत्यु हो जाती है और रानी मानकुमारी विधवा होकर वापस भारत लौट आती हैं। भारत आने पर रानी मानकुमारी को पता चलता है कि उनकी सारी अचल सम्पत्ति सरकार के हाथों पहुँच गयी है। इससे उन्हें अत्यधिक निराशा होती है। इसी बीच जोखनलाल की योजना के कारण उपर्युक्त व्यक्ति जोखनलाल के साथ सुमना पहुँचते हैं और सुमना के पास के घने जंगलों में कार बिगड़ जाने पर रानी मानकुमारी की भेंट उनसे होती है। रानी उन्हें अपनी कार से सकुशल सुमनपुर पहुँचा देती हैं। रानी मानकुमारी अनन्य सुन्दरी हैं, इसके साथ-साथ वैभव की चमक ने उनके व्यक्तित्व को अत्यधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली बना दिया है। इसीलिए मकोला से लेकर शिवानन्द शर्मा तक सभी व्यक्ति उनके सौन्दर्य से अभिभूत हो जाते हैं और अपने-अपने ढंग से रानी मानकुमारी को प्राप्त करने का उद्योग करने लगते हैं। ये सभी सामर्थ्य-मदोन्मत्त शक्तिशाली व्यक्ति, जो संसार में किसी के समक्ष झुकते नहीं, यहाँ

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 70

तक कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का दर्प पाले हैं, रानी मानकुमारी के समक्ष आते ही अपना गर्व भूल जाते हैं और प्रणय-निवेदन करने लगते हैं। उनका समस्त अहं रानी के रूप और यौवन की ज्वाला का सम्पर्क पाते ही पिघल जाता है। रानी मानकुमारी भी इनकी बातों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहतीं, उनकी दमित वासनाएँ उन्हें उल्लास-विलास की दुनिया में चलने के लिए प्रेरित करती हैं, किन्तु प्रकृति एवं नियति का विधान दूसरा ही है। प्रकृति इन शक्तिशाली व्यक्तियों के दर्प को भी अधिक समय तक बना नहीं रहने देती है और न मानकुमारी का पतन ही ईश्वर या नियति को स्वीकार है। अतः रोहिणी के जल-प्लावन में सभी विलुप्त हो जाते हैं। यहाँ आकर वर्मा जी ने नियति की शक्ति की पराकाष्ठा दिखला दी है। इंजीनियर देवलंकर जिस रोहिणी पर बाँध बनाना चाहते थे, वह पहले तो बाहर से सूखकर सिमट जाती है और बाद में उस समय, हिमालय के एक कच्चे पहाड़ को चीरकर फूट निकलती है, जिस समय उपर्युक्त सभी शक्तिशाली पुरुष अपनी शक्ति के दम्भ में चूर एक-दूसरे से घृणा करने लगते हैं और आपस में शत्रुता ठान बैठते हैं।

उस समय मेजर नाहरसिंह नियति के विधान का संकेत करते हैं - "मैं पूछता हूँ कि जितने अतिथि यहाँ एकत्रित हुए हैं, इनमें कौन सक्षम और समर्थ है, मेरा जवाब दो। तुम सब-के-सब अपनी निर्बलता और मृत्यु की सीमा लेकर आए हो ------ तुम नहीं देख पा रहे हो कि मृत्यु तुम्हारे सिर पर मँडरा रही है, तुम सब मिटने और मरने के लिए एकत्रित हुए हो यहाँ पर।" यह कहकर नाहरसिंह अपने अतिथियों को सचेत करने का प्रयत्न करते हैं। वह कहते हैं - "मैं कहता हूँ - भागो! भागो!"[1] किन्तु नाहरसिंह की यह चेतावनी भी किसी की रक्षा नहीं कर पाती क्योंकि यही नियति का विधान था। जल-प्लावन के भयंकर दृश्य को देख रानी मानकुमारी भयभीत हो उठती हैं। इस पर नाहरसिंह कहते हैं - "जो कुछ हो रहा है वह होना ही था। यही तो नियति का विधान था, इसे रोकने की क्षमता किसमें है? इस विनाश का आभास मुझे हो गया था, केवल आभास। स्पष्ट तो यह सब नहीं मालूम हो पाया मुझे। और उस अस्पष्ट आभास के इंगित पर मैंने इस विधान को बदलने का प्रयत्न भी किया, लेकिन इसमें मुझे असफलता मिली। जो होना था वह हो रहा है; नहीं रानी बहू, कहना यह उचित होगा कि वह हो चुका है। और जो कुछ हो चुका है, उसे भला होने से कोई कैसे रोक सकता है?"[2] इस 'होनी' में ही

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 298

2- वही- पृ० 318

वर्मा जी ने मनुष्य की सामर्थ्य ~~और~~ की सीमा दिखलाने का यत्न किया है। अत: अपने-अपने क्षेत्र के अत्यंत सक्षम, सामर्थ्यवान एवं शक्तिशाली पुरुष प्रकृति के प्रकोप के माध्यम से नियति के विधान के समक्ष पराजित हो जाते हैं। प्रचंड प्रबल जल का वेग उन्हें अपने अंक में छिपा लेता है। रानी मानकुमारी भी उस विनाश-लीला से बच नहीं पाती क्योंकि नाहरसिंह के शब्दों में - "भगवान नहीं चाहते कि यशनगर की राज्यलक्ष्मी को वेश्या का जीवन बिताना पड़े।"[1] अंतत: नाहरसिंह की भविष्यवाणी सत्य होती है, उनका पुत्र रघुराजसिंह भी इसी जल में समाधि लेने के लिए विवश हो जाता है और गुम्फित ठाकुरों का वंश सदैव के लिए विनष्ट हो जाता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में वर्मा जी ने एक वयोवृद्ध -अनुभव प्राप्त प्रौढ़ विचारक के रूप में मृत्यु एवं विनाश का बड़ा ही लोमहर्षक एवं सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। जल-प्लावन में एक-एक करके सबका करुण-अंत बड़ा मार्मिक बन पड़ा है।

'सामर्थ्य और सीमा' के सभी पात्र उच्च वर्ग से सम्बंधित बुद्धिजीवी एवं सुशिक्षित हैं, अत: उनके वार्तालाप का प्रमुख विषय देश की शोचनीय अवस्था से सम्बंधित रहा है। देश की ऐसी स्थिति के लिए वे उपर्युक्त सभी व्यक्ति एक दूसरे को दोषी ठहराते हैं। अपनी मनोग्रंथियों एवं विकृतियों को ढँकते हुए वे एक-दूसरे पर कटु व्यंग्य प्रहार करते हैं। वर्मा जी ने इन व्यक्तियों के सम्भाषण के माध्यम से देश की पतनावस्था पर विचार करने का अवसर ढूँढ़ निकाला है। सामंतवाद के पतन और पूँजीवाद के अभ्युदय, पूँजीपतियों की मुनाफाखोरी, मंत्रियों के बीच फैले भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी की प्रवृत्ति एवं देश की नवीन शासन-व्यवस्था पर वर्मा जी ने बड़ी गम्भीरता से विचार किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता, हिन्दुओं की फूट, भारतीयों की हिन्दी-भाषा विरोधी प्रवृत्ति तथा वैवाहिक संस्था की विकृतियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

रानी मानकुमारी के माध्यम से स्वच्छंद प्रेम-सम्बंधों पर भी उपन्यासकार ने लेखनी चलायी है। प्रारम्भ में यौवन के खेल को जीवन के सहज स्वाभाविक क्रम तथा जीवन की सक्रियता के रूप में स्वीकार करके उसके प्रति लेखक ने अपनी सहमति दिखलायी है, किन्तु वार्द्धक्य की ओर उन्मुख कथाकार का उसके प्रति विशेष आग्रह नहीं दिखता ; वरन् कुलीनता और संस्कारों की रक्षा के कारण प्रकृति द्वारा रानी की आशाओं पर पानी फिरवाकर

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 319

एक प्रकार से भोगवाद के प्रति निरुत्साह दिखलाया गया है ।

अंततः कहा जा सकता है कि 'प्रकृति पर विजय पाने का आज जो अभियान चलाया जा रहा है तथा बुद्धि,शक्ति-संकलित मानव, जो अपने को सर्वशक्तिमान समझने लगा है, की निस्सारता का बड़ा ही सजीव चित्रण उपन्यास में प्रतीकात्मक ढंग से हुआ है ।'[1] मनुष्य की सामर्थ्य की सीमा बांधने के लिए प्रकृति जो विनाश लीला करती है,उसका बड़ा ही रोमांचकारी एवं सशक्त चित्रण वर्मा जी ने किया है ।

<u>थके पाँव</u> :- इस उपन्यास का प्रकाशन काल सन् 1963 है । इसमें हमारे मध्यवर्गीय समाज की दो प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है, ये दोनों समस्याएँ ही अर्थ से सम्बंधित हैं । आर्थिक अभाव के कारण ही व्यक्ति जीविका की खोज में दर-दर की ठोकरें खाता घूमता रहता है, जीविका न मिलने पर उसका जीवन निराशा से भर उठता है । दूसरी ओर हमारे समाज की नैतिक मान्यताएँ और प्रथाएँ ऐसी हैं जो मध्यवर्ग के टूटे हारे व्यक्ति को और अधिक तोड़ती चली जाती हैं । उच्चवर्गीय व्यक्ति, जिसके पास अथाह सम्पत्ति है, नौकरी की चिन्ता नहीं करता । वह चाहे जो करे, अपने चाँदी के कौरों से समाज का मुँह बंद कर सकता है, निम्नवर्गीय परिवार के पास प्रदर्शन का ढकोसला नहीं है और उसके परिवार का हर प्राणी अपने पेट को भरने के लिए कमाने को स्वतंत्र है लेकिन एक मध्यवर्गीय व्यक्ति ही ऐसा है जिसे अकेले ही सारे परिवार के बोझ का जुआ ढोना पड़ता है, वह अपनी बहू,बेटियों से नौकरी करवाकर समाज के उपहास का पात्र नहीं बनना चाहता । साथ ही समाज की नैतिक और धार्मिक अपेक्षाएँ पूरी किए बिना वह जिन्दा नहीं रह सकता ।'भूले बिसरे चित्र' में भी इस समस्या को उठाया गयाथा किन्तु उस उपन्यास में समस्याओं के विशाल समूह में इस समस्या का स्वर अपनी पूर्ण तीव्रता से व्यक्त नहीं हो पाया था । इसी समस्या को पूरे 'इम्फेसिस' से अभिव्यक्ति 'थके पाँव' में ~~अभिव्यक्ति~~ मिली है ।

'केशवचन्द्र ने जब बी० ए० पास किया था तब उसके घर में जैसे खुशी की एक लहर दौड़ गयी थी ।उसके पिता ने उसके पास होने के उपलक्ष्य में अपने मित्रों को दावत दी थी और उसने स्वयं भी अपार साहस, उमंग और अदम्य जीवनी-शक्ति का अनुभव किया था । किन्तु उस दिन वह यह नहीं जानता था कि उसकी शिक्षा केवल इसलिए हुई थी कि वह नौकरी करे, बैल की भाँति गृहस्थी की गाड़ी ढोये ।'[2]

1- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद-डॉ० त्रिभुवनसिंह-पृ० 486-487
2- थके पाँव - पृ० 27

उसी दिन उसकी छोटी बहन सुधा को देखने के लिए वर के पिता आ गये थे लेकिन सब कुछ पसंद आने पर भी 4 हजार दहेज पर ही विवाह तय कर गये थे। और इस दहेज को जुटाने में अपने पिता की सहायता करने के लिए केशव को नौकरी की तलाश के लिए निकलना पड़ा था। एक दिन भी निश्चिंतता का वह नहीं पा सका था। उसके पिता रामचन्द्र एक साधारण क्लर्क थे किन्तु केशव ने उच्च शिक्षा पाई थी इसलिए वह अपने पिता के स्तर से ऊपर उठना चाहता था किन्तु जब नौकरी ढूँढ़ने निकला तो उसे पता चला कि अच्छी नौकरी मिलना तो दूर, नौकरी मिलना ही कितना कठिन है। शिक्षित युवकों में बेकारी का साम्राज्य फैला हुआ है और चारों ओर सिफारिश और 'भाई भतीजावाद' का ही जोर है। गर्मी में नौकरी के लिए दौड़ते-दौड़ते एक दिन उसे लू भी लग गई थी। उसके बाद बड़ी मुश्किल से उसे साठ रुपये की नौकरी मिल पाई थी। इसके बावजूद भी मुसीबत के समय उसकी पत्नी माधुरी और माँ को चुरा-छिपाकर जोड़े हुए रुपयों और अपने जेवरों से केशव की सहायता करनी ही पड़ती थी। किसी तरह काट-कपट करके उसने अपने भाइयों को पढ़ाया था किन्तु पढ़ने के बाद अच्छी नौकरी पाने के बाद भाई हाथ झाड़कर अलग हो गये थे और वह गृहस्थी के जंजाल में जकड़ता ही गया था।

उसका बड़ा लड़का मोहन पढ़ने में बहुत तेज था, पढ़ने के अलावा किसी चीज़ का शौक उसे नहीं था। उसने वकालत पढ़ी लेकिन सीधा सादा होने के कारण उसे इसमें सफलता नहीं मिली और उसे असिस्टेन्ट मैनेजर की नौकरी करनी पड़ी जो कि एक तरह की क्लर्की ही थी। केशव के दूसरे बच्चों को जमाने की हवा भी लगी थी। दूसरों को अच्छा खाता पहनता देख उनकी भी इच्छाएँ बढ़ती जाती थीं। दूसरे लड़के किशन का मन पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लगता था, उसने किसी तरह इण्टर पास किया था। वह जानता था कि वह बी० ए० की परीक्षा में पास नहीं होगा इसलिए वह पिता से छिपाकर बम्बई चला गया-एक्टर बनने के लिए। परिवार के जो सदस्य परिवार की जिम्मेदारियों से मुँह मोड़कर निकल वह सफलता के पथ पर बढ़ते गये और जो परिवार के मोह से बँधे, वह अभावों और विवशताओं में पिसते रहे। केशव ने अपनी पत्नी माधुरी के जेवर बेंच-बेंचकर अपने भाइयों सुरेश और रमेश को पढ़ाया, वह बड़े आदमी बन गये और केशव परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के लिए अभावों को अपने गले से लगाता रहा। वही स्थिति मोहन की रही, उसने अपने पिता का हाथ बँटाने के गम में राजरोग को आमंत्रित कर लिया और उसका भाई पिता और भाई भावज से रुपये ऐंठकर गुलछर्रे उड़ाता रहा। उसका तर्क था कि 'मोहन

भैया। परिवार के प्रति मेरा जो कुछ भी कर्तव्य है वह मैं जानता हूँ, लेकिन उसके पहले अपने प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य है वह मैं कैसे भूल जाऊँ। अपने को कष्ट में डालकर रहना- मेरे ख्याल से यह सबसे बड़ी बेवकूफी है। दूसरे तुम्हें उस समय पूछ सकते हैं जब तुम खुद अपने को पूछो।"[1]

मोहन की पत्नी सुशीला ने अपने ज़ेवर गिरवी रखकर पति का अच्छा इलाज करवाया और वह अच्छा भी हो गया लेकिन बीमारी के कारण नौकरी न कर पाने की वजह से उसकी बहन माया का विवाह न हो सका। केशवचन्द्र उसका विवाह एक दुहाजू से करना चाहते थे किन्तु माया एक विद्रोहिणी युवती थी, उसके स्वयं के कुछ स्वप्न थे इसलिए उसने समस्त मान्यताओं और लज्जा का उल्लंघन कर क्वांरी रहने का निर्णय पिता को सुना दिया।

केशवचन्द्र जानते थे कि बेटे की बीमारी, माया का अविवाहित रहना, बहू का नौकरी करना- इस सबके पीछे एक ही कारण था - 'अर्थ'। इस अर्थ के लिए उन्हें कितनों के सामने हाथ फैलाना पड़ा था और अपमानित होना पड़ा था। इस आर्थिक विवशता की स्थिति में ही एक दिन केशवचन्द्र ने एक सेठ से घूस ले ली यद्यपि जीवन भर सच्चरित्र और ईमानदार बने रहने के कारण उनकी आत्मा ने इसका कितना विरोध किया था। किन्तु वे इस रुपये को हाथ भी नहीं लगा सके थे क्योंकि वह पाप की कमाई थी। सृष्टि-कर्ता ने उनकी मानसिक शान्ति छीनकर घोर नरक की यातना का दण्ड दिया था। इस भयानक अशान्ति और ग्लानि से बचने के लिए उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। घूस के रुपयों को वह अनाथालय में दे देना चाहते थे तभी उनके आर्थिक कष्टों को दूर करने के लिए बेटे बेटी के पास से डेढ़ हजार रुपये की रजिस्ट्री आ गयी थी। जिस अर्थ के कारण उन्हें जीवन भर त्रस्त रहना पड़ा था- वह उन्हें मिला था लेकिन उसे पाकर भी जैसे उनको कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी। अजीब तरह की थकावट भरी थी उनके पैरों में। क्या यह थकावट नैतिक मान्यताओं के ध्वस्त होने की नहीं थी? जीवन भर अभावों में पिसते रहने के कारण यह थकावट मध्यमवर्ग के व्यक्ति के मन प्राण में समा जाती है। इसे संभवतः युग-युग तक दूर नहीं किया जा सकेगा।

'भूले बिसरे चित्र' में ~~xxxx~~ चार पीढ़ी के चित्रण के पश्चात् इस उपन्यास में

1- थके पाँव- पृ० 97

एक मध्यवर्गीय परिवार की तीन पीढ़ी की कहानी कही गयी है। तीनों पीढ़ियों के व्यक्तियों की समस्याएँ एक हैं, उनके नैतिक मूल्य एक हैं और इन समस्याओं से संघर्ष करने का एक ही ढंग है। 'ये मान्यताएँ केवल इस मध्य वर्ग के सत्य हैं और मान्यताओं को वह अपने सिर पर लादे हुए है। इस मध्य वर्ग के पैर लड़खड़ा रहे हैं- लेकिन अपने सिर के बोझ को उतार फेंकने का उसके पास साहस नहीं है।'[1] और जिन लोगों ने इन सामाजिक नैतिकताओं को छोड़ दिया है वह इस समाज से छिटककर अलग हो गये हैं। इसी मध्यमवर्ग की विवशता, छटपटाहट और निराशा का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास वर्मा जी के अन्य उपन्यासों से पर्याप्त भिन्न है। उच्च वर्ग की तड़क-भड़क और भोग-विलास की दुनिया से बिल्कुल विपरीत इसमें मध्यवर्ग के अत्यंत सामान्य एवं कुंठाग्रस्त जीवन का मार्मिक चित्रण करने का प्रयास वर्मा जी ने किया है।

<u>रेखा</u> :- 'रेखा' का प्रकाशन काल सन् 1964 ई० है। इस उपन्यास की, रेखा के चरित्र को लेकर, बहुत टीका-टिप्पणी हुई है। किसी ने उसे सस्ता, रोमाण्टिक एवं सेक्सपूर्ण उपन्यास कहा तो किसी ने उसे घटिया उपन्यास कह डाला और कुछ लोगों ने कहा कि 'वह अभिजात्य वर्ग की कहानी हो सकती है, किन्तु जनसाधारण की कहानी के यथार्थ से बहुत दूर है; वर्मा जी को अपनी वृद्धावस्था में ऐसे कामोत्तेजक और सस्ते उपन्यास को लिखने की क्या आवश्यकता आ पड़ी थी।'[2] 'रेखा' उपन्यास में एक युवती के काम-विकृति से प्रेरित स्वच्छंद कामाचार की कथा को विषय बनाया गया है और उसी विषय के आधार पर य इस उपन्यास को घटिया और सस्ता घोषित कर दिया गया। वास्तविकता यह है कि वर्मा जी ने 'रेखा' में किसी सामान्य नारी की कहानी नहीं कही है, वरन् यौन-समस्या की शिकार एक विशिष्ट युवती के मनोवैज्ञानिक केस को मार्मिक कथा के द्वारा प्रस्तुत किया है। स्त्री-पुरुष की यौन-दुर्बलता के सम्बंध में वर्मा जी की दृष्टि अत्यंत स्वच्छंदतावादी रही है, इसका परिचय हमें उनके पिछले उपन्यासों के अध्ययन से मिल चुका है। इस उपन्यास में भी 'वह फिर नहीं आई' की श्यामला की भाँति रेखा शारीरिक पवित्रता के अभाव में अपनी मानसिक पवित्रता को बराबर बनाए रखती है और जब उसकी मानसिक पवित्रता पर भी बार-बार आघात होने लगता है, तो वह विक्षिप्त हो जाती है। वर्मा जी ने एक बार कहा था -"प्रेम में दो तत्व हैं - Hunger of ~~body~~ soul (आत्मा की भूख) और Hunger of body (शरीर की भूख), दोनों से परिपुष्ट प्रेम ही शाश्वत

1- थके पाँव- पृ० 82
2- देखिए-भगवतीचरण वर्मा की 'रेखा' का रेखांकन-शीरीन भारती-नवभारत-टाइम्स, (बम्बई संस्करण) मंगलवार 25 जुलाई 1972

बन पाता है ।"[1] रेखा और प्रोफेसर प्रभाशंकर के प्रेम में इन दोनों का संतुलन नहीं रह पाता, इसीलिए उनका जीवन दु:खमय हो जाता है ।

रेखा एक अत्यंत आकर्षक एवं सुन्दर युवती है और बड़े सम्पन्न परिवार से सम्बंधित है । उस रुपगर्विता नवयुवती को दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें अभिभूत कर लेने में विशेष गर्व का अनुभव होता था - " अपना सौन्दर्य बिखेरती थी रेखा उन आकृतियों पर, केवल इसलिए कि इसमें उसे सुख मिलता था । उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर ये आकृतियाँ उसकी सराहना करें, यही नहीं, ये आकृतियाँ उसके आगे पीछे झुकें, उससे अपने को हीन समझें - वह इन आकृतियों पर जैसे छा जाना चाहती हो।"[2] किन्तु अपने प्रोफेसर प्रभाशंकर के समक्ष वह स्वयं एक आकृति ही नहीं, एक नाम बनकर रह जाती है । रुपगर्विता रेखा इस उपेक्षा को सहन नहीं कर पाती और दर्शनशास्त्र के विश्वविख्यात विद्वान एवं आकर्षक व्यक्तित्व के धनी प्रोफेसर प्रभाशंकर को अपनी ओर आकृष्ट करने के प्रयत्न में संलग्न हो जाती है । रेखा के अनुरोध पर प्रभाशंकर उसे अपने निर्देशन में एम० ए० का डिसर्टेशन लिखवाने को तैयार हो जाते हैं । अपना शोधकार्य दिखलाने के लिए रेखा प्रभाशंकर के घर जाती है । प्रभाशंकर के घर में रेखा देवकी से परिचित होती है । देवकी की प्रासंगिक कथा के द्वारा उपन्यासकार रेखा को प्रभाशंकर की दुर्बलता से परिचित करवा देता है और रेखा प्रोफेसर की नारी-विषयक दुर्बलता का लाभ अपने हित में उठाने का अवसर खोज निकालती है । देवकी के सम्बंध में प्रभाशंकर के पूछने पर वह कहती है -" यह भी कोई पूछने की बात है ? वह आपकी बहिन हो नहीं सकती, निकटस्थ रिश्तेदार भी नहीं हो सकती । अगर वह आपकी कुछ भी हो सकती है तो आपकी - कमजोरी ।"[3]

इसी प्रकार रेखा अपने बुद्धि-चातुर्य, सौन्दर्य और प्रतिभा से प्रभाशंकर को प्रभावित करती जाती है और अपनी कमजोरी का राज़ खुल जाने पर तो प्रभाशंकर उसके अधिक निकट आते जाते हैं । उन दोनों का आकर्षण धीरे-धीरे विपरीत सेक्स के दो प्राणियों

1- वर्मा जी से की गई एक भेंट वार्ता के आधार पर ।

2- रेखा - पृ० 9

3- वही- पृ० 36

के प्रेम में परिणत हो जाता है और वे दोनों परिणय-सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। रेखा की आत्मा एक प्रकाण्ड विद्वान् को पति-रूप में प्राप्त करके पुलकित हो उठती है और वह एक साल तक प्रोफेसर के रागानुराग में डूबी अपार तृप्ति का अनुभव करती है परन्तु एक दिन अचानक देवकी के पुत्र रामशंकर को देखकर उसका मन युवा प्रभाशंकर की कल्पना करके एक नयी उथल-पुथल से भर उठता है और वह अनुभव करती है कि प्रभाशंकर में यौवन की ताजगी समाप्त हो चुकी है। प्रथम बार उसके मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या आत्म से पृथक् शरीर की भी कोई माँग होती है? रेखा की मानसिक उथल-पुथल का प्रभाव उसके व्यवहार पर भी पड़ता है। वह रामशंकर के शरीर के प्रति आकर्षित होती है, उसके बलिष्ठ शरीर को बाँहों में भरकर उसे अतीव सुख का अनुभव होता है। इस सुख की कामना उसमें एक पागलपन भर देती है और वह रामशंकर के विदेश जाते समय हँसती ही जाती है। रेखा ने जिस रामशंकर के प्रति इतनी ममता दिखलायी थी, उसके जाने पर उसका-हंसना उसकी मानसिक उद्विग्नता का द्योतन करता है।

शरीर की भूख उसे इतना अविवेकी एवं दुस्साहसी बना देती है कि वह ~~एकोपरान्त~~ एक के बाद एक पुरुष से इस अभाव की पूर्ति करती है। किन्तु उसका हृदय, आत्मा और मन उसके शरीर का साथ नहीं देतक। हर बार वह अनुभव करती है कि वह केवल प्रभाशंकर की है और उसने प्रभाशंकर के साथ विश्वासघात किया है। अपने भाई अरुण के मित्र सोमेश्वर से प्रथम बार शारीरिक सम्पर्क होने पर उसे पहले तो तृप्ति का अनुभव होता है, किन्तु कामवासना तृप्त हो जाने पर उसकी आत्मा उसे धिक्कारना प्रारम्भ करती है - "यह क्या कर डाला उसने! उसकी सारी पवित्रता नष्ट हो गयी, उसने अपने देवता, अपने आराध्य के साथ कितना बड़ा विश्वासघात कर डाला!"[1] वह निश्चय करती है कि वह प्रोफेसर को सब कुछ बताकर क्षमा माँग लेगी किन्तु दूसरे क्षण इस भावना का प्रतिवाद करती है उसकी बुद्धि। वह सोचती है - नहीं वह यह बात प्रोफेसर को कभी नहीं बतायेगी। बता देने से उसके पाप की गुरुता समाप्त नहीं हो जायगी और उसके नीच कर्म से प्रोफेसर के मन को बहुत ठेस पहुँचेगी। वह इस सदमे को कभी बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे और वह उसके पाप की ज्वाला में झुलसा करेंगे। इस तर्क से अपनी भावना को दबाकर वह इस घटना को

1- रेखा- पृ० 110

छिपा जाती है। किन्तु कुछ दिन पश्चात् उसे पता चलता है कि उसे सोमेश्वर से गर्भ रह गया है। वह जानती है कि उसके विवाहित होने के कारण कोई उसके चरित्र पर शंका नहीं कर सकता, किन्तु इसमें अड़चन यह है कि सोमेश्वर के परिवार में पागलपन की परम्परा है, जिसके लक्षण सोमेश्वर के असामान्य व्यक्तित्व में परिलक्षित होते हैं। यह विचार, कि उस पागल व्यक्ति का प्रतिरूप उसका पुत्र निर्बुद्ध और पागल होगा और प्रोफेसर के नाम को कलंकित करेगा, उसे पुन: मानसिक अशान्ति से भर देता है। वह उस गर्भ से मुक्ति पाने का निर्णय कर लेती है और उसे इसमें सफलता भी मिलती है किन्तु इस घटना के पश्चात् रेखा में एक दुस्साहस जन्म ले लेता है और वह बार-बार विभिन्न परिस्थितियों में निरंजन, शशिकान्त, यशवन्तसिंह तथा योगेन्द्रनाथ आदि पुरुषों की अंकशायिनी बनती है। उसे वासना के इस खेल में आनन्द आने लगता है किन्तु उसकी आत्मा प्रोफेसर के प्रति बराबर एकनिष्ठ बनी रहती है।

रेखा के अवैध सम्बंध की खबर प्रभाशंकर को भी लग जाती है, निरंजन कपूर का सिगरेट केस रेखा के पाप-कर्म का भण्डाफोड़ कर देता है। प्रोफेसर को रेखा के चरित्र पर जो सन्देह होता है, वह विभिन्न घटनाओं से प्रगाढ़तर होता जाता है और उन दोनों के दाम्पत्य जीवन में कटुता आने लगती है। रेखा बार-बार सुधरने का यत्न करती है किन्तु `शरीर का धर्म` उसे इस पापकर्म के लिए व्याकुल कर देता है। अभी तक जिन पर-पुरुषों से रेखा का शारीरिक सम्बंध हुआ था, उनसे उसे किसी प्रकार का आत्मिक लगाव नहीं था, किन्तु प्रोफेसर प्रभाशंकर की अस्वस्थता के समय उसका परिचय डा० योगेन्द्रनाथ मिश्र से होता है, जो प्रोफेसर प्रभाशंकर की ही भाँति अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर चुके हैं। रेखा उनसे अत्यधिक प्रभावित होती है। योगेन्द्रनाथ रेखा के रूप से प्रभावित तो होते हैं, किन्तु उन्हें अपने ऊपर पूर्ण अधिकार है। वह रेखा के प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाते। रेखा योगेन्द्रनाथ की उपेक्षा सहन नहीं कर पाती है और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने का पूरा यत्न करती है। वह अपनी सारी कमजोरियाँ योगेन्द्रनाथ के समक्ष उद्घाटित कर देती है। योगेन्द्रनाथ शरीर की कमजोरियों पर विजय पाने का आग्रह करते हैं तो रेखा उनसे कहती है -`शरीर की कमजोरियों पर विजय पाई जा सकती है, अपनी आत्मा को दबाकर, उसे कुण्ठित करके। हमारे धर्मशास्त्रों में यही व्यवस्था की गई है - व्रत, उपवास, तपस्या। अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमजोरियों पर विजय पाना-कितना भौंडा विधान है।`[1] इस प्रकार रेखा योगेन्द्रनाथ को आकृष्ट करने का यत्न करती

1- रेखा- पृ० 264-65

है । रेखा जैसे-जैसे योगेन्द्रनाथ के निकट आना चाहती है, योगेन्द्रनाथ का संयम उन्हें रेखा से दूर रहने को प्रेरित करता है, किन्तु रेखा अपना प्रयत्न जारी रखती है और उसका प्रयत्न सफल होता है । प्रोफेसर प्रभाशंकर अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए विदेश चले जाते हैं और इस बीच दोनों में घनिष्ठता स्थापित हो जाती है । और रानीखेत में उनका सहवास उन्हें अभिन्नतम बना देता है । रेखा अनुभव करती है कि योगेन्द्र के साथ उसके प्रेम में आत्मा और शरीर का पूर्ण सहयोग है और वह योगेन्द्रनाथ के बिना नहीं रह सकती ।

प्रोफेसर विदेश से लौटकर आते हैं तो रेखा और योगेन्द्रनाथ के प्रणय-सम्बंध की चर्चा प्रभाशंकर के कानों में पड़ती है, किन्तु रेखा डा० मिश्र से मिलना बन्द करके तथा प्रोफेसर की सेवा करके उनका विश्वास प्राप्त कर लेती है । परन्तु प्रभाशंकर अपने ढलते शरीर की हीन-ग्रंथि से पीड़ित होकर डा० मिश्र को विदेश जाने के लिए सहमत करके अपना कंटक सदैव के लिए दूर कर देना चाहते हैं । उनकी इस कुटिलता का इज़हार जब रेखा पर होता है तो वह इसका विरोध करती है । इससे क्रुद्ध होकर प्रोफेसर उसे मारने दौड़ते हैं और इसी उत्तेजना की स्थिति में उन्हें लकवा मार जाता है । रेखा मानसिक और शारीरिक यंत्रणा सहते हुए भी प्रोफेसर की अथक सेवा करती है परन्तु योगेन्द्रनाथ से अलग रह पाना उसे असंभव प्रतीत होता है । डा० मिश्र रेखा के समक्ष अपने साथ औसलों चलने का प्रस्ताव रखते हैं । पहले तो रेखा मृत्यु के मुख में पड़े अपने पति को छोड़कर जाने से इंकार कर देती है, किन्तु प्रोफेसर की गाली-गलौज और कटुता के कारण वह औसलों जाने को तैयार हो जाती है और प्रोफेसर को उनकी भूतपूर्व प्रेमिका देवकी के हाथों सौंप कर निश्चिंत हो जाना चाहती है किन्तु उसके मन की इच्छा पूरी नहीं हो पाती ।उसका अन्तर्द्वन्द्व अंत समय तक समाप्त नहीं होता । योगेन्द्रनाथ का प्लेन चला जाता है और प्रोफेसर भी अपने प्राण त्याग देते हैं । रेखा कहती है -"नियति ने मेरे साथ बहुत बड़ा खिलवाड़ किया है, लेकिन मैं रेखा हूँ - रेखा ! सब मिट गए, लेकिन यह रेखा-मिट-मिटकर भी यह अमिट है ।"[1] शारीरिक अतृप्ति का पागलपन आज उसे मानसिक रूप से भी विक्षिप्त बना देता है ।

1- रेखा- पृ० 351

उपर्युक्त कथानक का सम्पूर्ण ताना-बाना शारीरिक रूप से अतृप्त नारी की मनोवैज्ञानिक कथा पर बुना गया है । इस मुख्य कथा के साथ-साथ इस उपन्यास में रत्ना चावला, शीरीं और निरंजन कपूर तथा ज्ञानवती और शिवेन्द्र धीर की दो प्रासंगिक कथाएँ भी हैं, जिनका समावेश प्रेम के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है । रत्ना में उद्दाम कामवासना है और ज्ञानवती का प्रेम शुद्ध आत्मा से सम्बंधित है । ये दोनों ही प्रेम की असामान्य स्थितियाँ है । इन दोनों स्थितियों के प्रति वर्मा जी की सहमति नहीं दिखती । रेखा के औपन्यासिक जीवन में भी ये दोनों असामान्य स्थितियाँ देखने को मिलती हैं । पहले रेखा का प्रेम केवल आत्मा का सम्बन्ध है , वह शरीर की भूख की अवहेलना करके प्रौढ़ प्रोफेसर से विवाह करती है और बाद में वह वासना की गुलाम बन जाती है इसीलिए उसे विक्षिप्तावस्था तक पहुँचना पड़ता है । 'रेखा' के सृजन के पीछे वर्मा जी का उद्देश्य सस्ता साहित्य लिखने का न होकर जीवन में संतुलित दृष्टिकोण के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करने का रहा है । जीवन में संतुलन तभी आ सकता है जब आत्मा और शरीर दोनों ही समुचित संतुलन में संतुष्ट हों । इसी संतुलित जीवन-दर्शन को व्यक्त करते हुए प्रभाशंकर कहते हैं -" भूख शरीर का ही गुण नहीं, वह जीवन का गुण है । जिसे हम इच्छा अथवा अभिलाषा कहते हैं, वह भूख का ही तो दूसरा रूप है । ---- तो इस भूख से त्राण नहीं मिलने का । हाँ, मैं जीवन में संयम की महत्ता को स्वीकार करता हूँ । भूख स्वयं में विकृति नहीं है, उसकी उग्रता और भूख को वहन करनेवाले व्यक्ति का असंयम- ये दोनों मिलकर विकृतियों को जन्म देते हैं । इसीलिए जीवन में संयम की नितांत आवश्यकता है कि हम विकृतियों से बचे रह सकें ।"[1] योगेन्द्रनाथ की प्रेम की परिभाषा भी इसी संतुलन की ओर इंगित करती है -"तुम प्रोफेसर से प्रेम नहीं करतीं । उनके प्रति तुम्हारे अन्दर एक ममता की भावना है, तुम्हारी आत्मा पर उनकी आत्मा छाई हुई है । प्रेम आत्मा और शरीर इन दोनों के समान भाव से एक दूसरे में लय की प्रक्रिया का नाम है ।"[2] रेखा इन दोनों में संतुलन नहीं रख पाती, अतः वह असफल होती है ।

'रेखा' की मनोवैज्ञानिक कथा के माध्यम से वर्मा जी ने 'वासना या प्रेम' की महत्वपूर्ण समस्या पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास के द्वारा उच्चवर्गीय समाज की यौन-विकृतियों का यथार्थ चित्रण हुआ है ।

1- रेखा- पृ० 297

2- वही- पृ० 273

सीधी सच्ची बातें :- 1968 ई० में प्रकाशित 'सीधी सच्ची बातें' वर्मा जी का एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में 1939 से 1948 ई० तक के भारत की राजनीतिक गतिविधियों और उनके फलस्वरूप जनमानस में उठनेवाली प्रतिक्रिया को प्रमुख रूप से व्यक्त किया गया है। परतंत्र भारत में राजनीतिक चेतना किस प्रकार कुंठित होकर एक वर्ग तक सीमित हो गयी थी और गाँधी जी की अहिंसा ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को किस प्रकार मद्धिम और शिथिल बना दिया था और भारतीय जनता में कुछ निर्णय न ले पाने की निष्क्रियता और अकर्मण्यता व्याप्त हो गयी थी- इसे विषय बनाया गया है। क्या यह सत्य है - यह कायरता और निष्क्रियता ही जन-जन में व्याप्त थी - इस विषय में लोगों में मतभेद हो सकता है किन्तु वर्मा जी स्वयं उस समय के भोक्ता रह चुके हैं इसलिए उन्होंने स्वयं जो देखा था उसे अपने दृष्टिकोण से व्यक्त किया है।

जगतप्रकाश :- उत्तरप्रदेश के एक छोटे से गाँव का रहनेवाला है और अपनी बड़ी बहन के अध्यवसाय से अपनी एम० ए० की पढ़ाई पूरी कर चुका है। वह अपनी बहन की आकांक्षाओं को पूरी करने के लिए विश्व का महान अर्थशास्त्री बनना चाहता था इसीलिए असीमित और अथाह ज्ञान के क्षेत्र में उसने अपने को खो दिया था। तभी उसका मित्र कमलाकान्त, जो एक बड़े जमींदार का पुत्र था, उसे आग्रह करके अपने साथ कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में ले जाता है। वहीं जाते समय जगतप्रकाश का परिचय कमलाकान्त के अन्य मित्रों से होता है जो सभी बड़े-बड़े पूँजीपतियों के पुत्र-पुत्रियाँ हैं। जगतप्रकाश को इस उच्च-वर्ग के सदस्यों के साथ चलने में संकोच और हीनता का अनुभव होता है किन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् इन लोगों के खुले हृदय के कारण उसका संकोच दूर हो जाता है साथ ही कमलाकान्त उसकी हीन-भावना को समझ अपने साथियों के बारे में स्पष्टीकरण भी दे देता है - 'हम लोग उस समाज की व्यवस्था के समर्थक हैं जिसमें ऊँच-नीच की भावना न हो, जहाँ सम्पन्नता का गर्व न हो, अभाव की कुण्ठा न हो। मेरे ये साथी- इन्हें तुमने देखा है। कहीं भी अलगाव की भावना दिखी इन लोगों में तुम्हें ? हम सब इस देश में समाजवादी व्यवस्था कायम करना चाहते हैं, हम सब वर्गभेद मिटाना चाहते हैं। तुम्हें इन लोगों से मिलने-जुलने में संकोच नहीं होना चाहिए।'[1] त्रिपुरी पहुँचने पर जगत इन लोगों में एकदम घुलमिल जाता

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 23

है और विशेषतया कुलसुम कावसजी के विश्वास और आत्मीयता से प्रभावित होकर जगत-प्रकाश की उससे इतनी घनिष्टता हो जाती है कि वह उसे छोड़ने बम्बई चला जाता है।

इसके बाद तो कुलसुम जगतप्रकाश के सीधे सच्चे स्वभाव से इतनी प्रसन्न हो जाती है कि वह जगतप्रकाश को अपने समाज में किसी प्रकार की हीनता का अनुभव नहीं होने देती वह हर प्रकार से जगत के की आर्थिक सहायता करती है। उसे अपने साथ अनेक स्थानों पर ले जाती है अथवा किसी न किसी काम से भेज देती है। दिल्ली, अमृतसर, कानपुर,कलकत्ता इत्यादि प जगहों की यात्रा करके जगत के समक्ष अनुभवों के नित्य नये पृष्ठ खुलते चले जाते हैं। जगत इलाहाबाद में जर्मन विद्वान् शाइनर से मिलकर अपने देश की वीरता और कायरता के बारे में जानता है। मिस्टर बंसगोपाल बार-एट-ला और रूपलाल से मिलकर लोगों की स्वार्थपरता और पुलिस की जालसाजी और धोखेधड़ी का अनुभव प्राप्त करता है। बंसगोपाल की पुत्री सुषमा का कथन उच्चवर्ग की विलासिता, को उजागर कर देता है -"आज इतवार का दिन है, छुट्टी का, तरह-तरह के मनोरंजन का। ----- पापा क क्लब में शराब पीकर और जुआ खेलकर प्रसन्न होते हैं, ममी 'जय जगदीश हरे' गाकर पसन्न होती हैं।"[1]और सुषमा अपने बंगले के एकांत का फायदा उठाकर, अपनी वासना को तृप्त करके अपना मनोरंजन करना चाहती है। जगत कुलसुम के सम्पर्क में आकर उच्चवर्गीय समाज के अभावहीन जीवन की एकरसता से भी परिचित होता है। जगतप्रकाश कुलसुम की तरफ से जसवन्त कपूर की शादी में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली होते हुए अमृतसर जाता है। दिल्ली में शायर सैलाव के साथ उसकी महबूबा वेश्या शबनम के यहां जाकर उसे वेश्याओं के स्वार्थी और बेवफा स्वभाव के दर्शन करता है। अमृतसर जाते हुए उसकी भेंट जसवन्त कपूर के मामा लाला सेवाराम से होती है और उसे व्यापारियों की अवसरवादिता, मुनाफाखोरी और युद्ध के समय धन लूटने की वृत्ति का पता चलता है। जसवन्त की शादी में आये उसके युवा-मित्रों के माध्यम से उसे भारत के उच्चवर्गीय युवक की असलियत का ज्ञान होता है -"ये सब अतिथि अपने को बौद्धिक कहते या समझते थे। उनमें से हरेक के अपने निजी राजनीतिक विचार थे, अपना राजनीतिक दर्शन था। वे आपस में तर्क करते थे ऊँची आवाज में,और विदेशी विचारकों का हवाला देते थे। --- उनमें से हरेक में कहीं न कहीं एक उलझन है।

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 240

उन्होंने अध्ययन किया था और अध्ययन के फलस्वरूप उनका सारा ज्ञान अर्जित या उधार का ज्ञान था । उनमें अधिकांश सम्पन्न घरों के लोग थे, त्याग और सेवा का जामा पहने हुए । वे गरीबों को अमीर बनाने निकले थे, उपकार करने के लिए ; और अपनी उदार भावना का उन्हें बोध था । वे सम्पन्न थे, समर्थ थे, साहसी थे, उन्हें भगवान् को प्रसन्न करना नहीं था, अपने अहम को तुष्ट करना था । वे बड़े आत्मविश्वास से बातें करते थे ।[1] इसके बाद जगतप्रकाश रामगढ़ के कांग्रेस अधिवेशन में जाता है वहाँ उसे कांग्रेस में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों की चरित्रहीनता के दर्शन होते हैं, उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी । त्रिपुरी अधिवेशन में जगत ने कुलसुम के मामा दिनशा भाबवाला, जिनकी जलबपुर में शराब की दुकान थी, से सुना था कि "इधर कांग्रेस होने से विलायती शराब की बिक्री बहुत बढ़ गई है ।"[2] उसने बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं के व्यक्तित्व की टकराहट और झूठे अहं के बारे में भी सुना था । रामगढ़ में उसके सामने इन कांग्रेस कार्यकर्ताओं का एक नया पहलू सामने आता है ।इन ब कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में कोई चरित्र नहीं था - कोई सिद्धान्त नहीं था, उनमें हिन्दू-मुसलमान का आपसी मनमुटाव था और वह एक दूसरे के व्यक्तिगत चरित्र पर लांछन लगाकर कटु प्रहार करते थे । रामगढ़ में उसका परिचय एक अध्यापिका कांग्रेस कार्यकर्त्री शिवदुलारी देवी से होता है जिनका चरित्र वासना से ओतप्रोत था, जो कुत्सित कर्मी भोगी पुरुष की वासना का शिकार बनकर स्वयं इतनी पतित हो गयी थीं कि अपने सम्पर्क में आये प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वासना में डुबो देना चाहती थी । जगत को रूपलाल और बंसगोपाल के षड्यंत्र का शिकार बनकर एक कम्यूनिस्ट होने के आरोप में गिरफ्तार होना पड़ता है और उसे डेढ़ साल तक जेल में रहकर जेल जीवन के अनुभव भी प्राप्त होते हैं । वह अपने खाली समय ~~पंक्तिब~~ में चिंतन मनन करके, जेल के साथियों से विचार-विमर्श करके कम्यूनिज्म से प्रभावित होता है और कम्यूनिज्म की दीक्षा ले लेता है । जेल से छूटने पर गाँव महोना आकर उसे गाँवों की निष्क्रियता और उदासीनता का अनुभव होता है । उदास और निष्प्राण से दिखनेवाले ग्रामीण -जनों के बीच भी वणिक-वर्ग देश की स्थिति के प्रति कितना चेतन था, अंगनू साह एक ओर तो कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता था और देश के काम के बहाने भोली-भाली जनता का पैसा लूटने में उसे तनिक भी संकोच नहीं होता था -दूसरी ओर विश्वयुद्ध के कारण उत्पन्न स्थिति से

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 280

2- वही- पृ० 30

फायदा उठाकर अमीर बन रहा था, पैसा बटोर रहा था । सोये हुए गाँव से ऊबकर वह इलाहाबाद पहुँचता है वहां उसे विश्वविधालयों के उच्चपदस्थ अधिकारियों की भीरुता और कायरता से भी सामना करना पड़ता है और वहाँ से निराश कानपुर पहुँचता है । वहाँ उसे पता चलता है सुखलाल जैसे नीची जाति के लोग गाँधी जी के हरिजन वाले नारे का फायदा उठाकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाने में लगे थे और रूपलाल जैसे घृणित और स्वार्थी पुलिस की नौकरी करके अपना मतलब गाँठ रहे थे, ब्रिटिश सरकार को देशवासियों के भेद बतलाकर देश-द्रोह के भागी बन रहे थे । रूपलाल बिना झिझक के कहता है -"मुझे सरकार से तनख्वाह ही इसलिए मिलती है कि मैं आप लोगों से मिलूँ, आप लोगों के दिल की बात निकालकर सरकार को उसकी इत्तिला कर दूँ ।"[1] जगत अपने वर्ग की तुच्छताओं से उबरकर पुन: दिल्ली पहुँचता है कम्युनिस्ट पार्टी की मीटिंग में । उस मीटिंग में उठे विवाद से जगत को पता चलता है कि यहाँ भी मतभेद है, कामरेड्स अपने पथ को स्पष्टतया देख नहीं पा रहे थे । उसके साथी पीपुल्स वार में रूस की यथाशक्ति सहायता करना चाहते थे किन्तु उन्हें भय था कि कहीं उन्हें देशद्रोही न करार दे दिया जाय । दिल्ली में उसने देखा कि सैलाब जैसा व्यक्ति जिसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, जो सिर्फ अपने ऐश को पूरा करने के लिए अवसर की ताक में रहता है, कभी देश की स्वतंत्रता के गीत गाता है, कभी वार एफर्ट्स के लिए नज़्म लिखने को तैयार हो जाता है और कभी फिल्म फाइनेंसर की बीबी की खुशामद बजाने लगता है ताकि उसे फिल्मों में गीत लिखने का काम मिल जाय ; वही अपनी खुशामद और तरकीबों से वार प्रोपेगण्डा के इंचार्ज के रूप में बहुत बड़ा अफसर बन जाता है और शराब व ऐशोआराम में डूब जाता है । लाला सेवाराम जैसे पूँजीपति युद्ध की स्थिति से फायदा उठाकर अपनी सम्पदा की वृद्धि कर रहे थे । देश की जनता की निराशा और उलझन तथा पूँजीपति वर्ग की मुनाफाखोरी को देख-देखकर जगत ऊब चला था । दूसरी ओर उसके युवा-जीवन में आयी प्रेम की सभी स्थितियाँ समाप्त हो चली थीं । यमुना, जिसकी निश्छल और सरल मूर्ति उसके मनमस्तिष्क को घेरे रहती थी, रूपलाल द्वारा छल से छीन ली गई थी । कुलसुम तो प्रारम्भ से ही उसके साथ खिलवाड़ कर रही थी । शायद जगत उसके सम्मोहन में अपना जीवन बिता देता, लेकिन वह कुलसुम भी परवेज़ की हो चुकी थी । कुलसुम की आत्मीयता

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 375

के मोहक इन्द्रजाल से छिटककर वह पीपुल्स वार में सक्रिय सहयोग देने का निर्णय कर लेता है। वह कुलसुम से कहता है -"मेरी ट्रैजेडी यह है कि मैं अभी तक किसी को सहारा नहीं दे सका, दूसरे ही मुझे सहारा देते रहे हैं। मैं पुरुष हूँ, सहारा देने के लिए पैदा हुआ हूँ। आज मिटती हुई और बरबाद होती हुई दुनिया को मेरे सहारे की जरूरत है।"[1] जगत ब्रिटिश सरकार की तरफ से लड़ने के लिए मिस्र चला जाता है किन्तु युद्धभूमि के संहारात्मक दृश्य और अंग्रेज अफसर की भारतीयों को सुअर, और गधा समझने तथा अपमानित करने की वृत्ति उसके अन्दर मानसिक उद्वेलन के बीज बो देते हैं। इसके साथ ही एक जर्मन सैनिक, जो पहले दर्शनशास्त्र का अध्यापक था और जिसे जबर्दस्ती युद्ध की विभीषिका में ढकेल दिया गया था, की विचित्र परिस्थितियों में हत्या उसके लिए एक ऐसा नासूर छोड़ जाती है जिससे वह कभी मुक्ति नहीं पा सका। वह नर्वस ब्रेकडाउन का शिकार हो जाता है। उसे डॉक्टर की सलाह से बम्बई लौट आना पड़ता है। बम्बई में गाँधी जी के आन्दोलन की धूम थी, चारों ओर अंग्रेजों को देश से बाहर खदेड़ देने की उमंग थी। गाँधी जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था और 'करो या मरो' का नारा दिया था जिसके फलस्वरूप जनता की उत्तेजना ने हिंसा का रूप धारण कर लिया था। "चारों ओर एक उत्साह, एक उमंग, और ठीक उसके विपरीत जगत प्रकाश के मन में घुटन और नपुंसकता से भरा क्रोध था।"[2] वही जगतप्रकाश, जो गाँधी जी की अहिंसा को कायरता की संज्ञा देता था, जनता की हिंसात्मक गतिविधियों का विरोध करता है और उसके मन में इस शंका का उदय होता है कि क्या कम्युनिस्ट पार्टी हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की मौजूदगी का समर्थन करती है। इसी उलझन में वह अपनी बहन से मिलने महोना चल देता है। बम्बई से महोना के मार्ग में उसने देखा गाँधी जी के 'करो या मरो' के नारे से दिग्भ्रमित होकर तार काटे जा रहे थे, पटरियाँ तोड़ी जा रही थीं, जनता में एक आक्रोश भर गया था और उसकी रोकथाम के लिए ब्रिटिश सरकार सेना बुला रही थी। गाँव पहुँचने पर उसे स्थिति की वास्तविकता का ज्ञान हुआ। अंगनू साह जैसे अज्ञानी नेता गाँधी जी के इस नारे का एकदम गलतढंग से उपयोग कर रहे थे फलस्वरूप गाँवों में गुण्डों का राज्य हो गया था, लूट-पाट-सी मची थी वहाँ। देश के बड़े-बड़े नेता गाँधी जी सहित गिरफ्तार कर लिए गये थे और छोटे-छोटे टुटपुँजिए चवन्निया नेता स्वार्थसिद्धि के लिए जनता को बरगला रहे थे।

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 424

2- वही- पृ० 478

क्षणिक और अस्थायी आवेग से अपनायी हिंसा के कारण जनता को ब्रिटिश सरकार की नृशंसता का सामना करना पड़ रहा था। ब्रिटिश सैनिक बड़ी निर्ममता से जनता को गोलियों से भूँज रहे थे। इसी नृशंसता का शिकार परोपकारी अनुराधा को होना पड़ा। जगत महोना से बहन की ममता छिन जाने के कारण इलाहाबाद लौट आता है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उसे लेक्चररशिप मिल जाती है और वह बंसगोपाल की लड़की सुषमा को लेकर जीवन को रंगीन स्वप्नों से सजाने लगता है जिसके कारण उसे अन्य प्राध्यापकों की ईर्ष्या का सामना करना पड़ता है, उसे उच्चशिक्षा के केन्द्र विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों की तुच्छ मनोवृत्ति के दर्शन भी होते हैं। जिस सुषमा के कारण जगत को अपने प्राध्यापक साथियों की आलोचना और अवहेलना का सामना करना पड़ा था वही सुषमा उसके स्वप्न-जाल को क्षण भर में छिन्न- भिन्न कर देती है। उसकी तंद्रा टूटती है तो उसे ज्ञात होता है कि सुषमा भी अपने पिता के समान बदला लेने के लिए ही प्रेम का स्वाँग रचा रही थी उसने उसकी सच्चरित्रता की मूर्ति खंडित करने का सफल यत्न किया था। जगत निराशमन होकर कानपुर जाता है जहाँ उसे रूपलाल की शैतानियत का उग्र रूप दिखता है, उसके कारण शिवदुलारी को अपने बेईमान, बदनीयत और कमीने पति की हत्या और अपनी आत्महत्या के लिए विवश होना पड़ता है। शिवदुलारी जैसी दुश्चरित्र किन्तु नेक-दिल स्त्री स्वयं मरकर बाबूलाल, जो एक सामान्य स्थिति का कम्यूनिस्ट कार्यकर्ता है, को बचा लेती है। जगतप्रकाश को इस धोखेधड़ी, जालसाज और स्वार्थी दुनिया के कड़वे मीठे अनुभव होते जा रहे थे। वह बम्बई पहुँचता है तो देखता है युद्ध युद्ध के कारण मँहगाई बेतहाशा बढ़ती जा रही है, ब्लैक मार्केटिंग की धूम है, गरीब और गरीब हो रहा है तथा अमीर बिना रोक-टोक के अमीर हो रहा है। तभी बंगाल में अकाल पड़ने की खबर आती है। वह जसवन्त कपूर कीसहायता से एक बार पुनः कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट होता है। अकाल - पीड़ितों की सहायता के लिए वह जसवन्त की ओर से खाद्यान्न लेकर कलकत्ता पहुँचता है। जिस बंगाल में भीषण दुष्काल पड़ा था उसकी राजधानी कलकत्ता पहुंचता०ई०p०फ्कि में अकाल की विभीषिका का चिन्ह भी नहीं दिखता, वहाँ होटलों में दावतें होती थीं, सेवाश्रम रिलीफ सोसायटी के प्रधान को अपनी बेटी के विवाह की चिन्ता थी न कि अकाल की। विवाह रचाया गया जिसमें पांच छः सौ आदमियों की दावत हुई जिसकी सुस्वादु और अपरिमित जूठन को खाने के लिए कंगालों और भुखमरों की भीड़ पाँच छः हजार की संख्या में मुँह बाए खड़ी थ आर्तनाद कर रही थी। अंग्रेज पत्रकार बंगाल फेमिन का हाल देखने तथा ब्रिटिश सरकार की आलोचना करने आये थे लेकिन भारतीय जनता में इतना

साहस नहीं था कि वह इस अकाल के समय मुनाफाखोरों के प्रति विद्रोह कर सके, बड़े-बड़े शानदार होटलों को लूट सके । वह असहाय-सी भूख से चिल्लाती थी और चिल्लाते-चिल्लाते प्राण दे देती थी । जगत उस मृत्यु के ताण्डव से घबरा जाता है और उसे अपनी जान बचाने के लिए बम्बई भागना पड़ता है । कुछ स्वस्थ होने पर उसे पता चलता है कि विश्व की राजनीति के साथ भारत की राजनीति भी अपने निर्णायक दौर से गुजर रही है। जर्मनी परास्त हो चुका था, ब्रिटेन विजयी हुआ था, किन्तु अन्दर ही अन्दर वह टूट चुका था, उसकी सेना का एक बहुत बड़ा अंश समाप्त हो गया था इसलिए भारत पर अपना साम्राज्य बनाए रखने की शक्ति नहीं रह गयी थी । वह भारत से मुक्त हो जाना चाहता था । देश स्वतंत्र होने के लिए तैयार नहीं था, बड़े-बड़े नेताओं में सत्ता को हथियाने के लिए टकराहट हो रही थी । अंग्रेजों ने अपने शासन को मजबूत करने के लिए डिवाइड एण्ड रूल के सिद्धान्त के आधार पर हिन्दू-मुसलमान की घृणा के जिस बीज को बोया था, वह गांधी जी की अदूरदर्शिता के कारण पल्लवित हो रहा था । इस बीच भारतीय नौसेना ने ब्रिटिश सरकार के अन्याय के विरोध में सशक्त विद्रोह खड़ा कर दिया । ब्रिटिश सरकार ने समझ लिया कि अब अधिक समय तक भारत में बने रहने पर उसकी भलाई नहीं,इसलिए उसने भारत देश को स्वतंत्र कर दिया । इसी के साथ-साथ भारत दो टुकड़ों में बँट गया । हिन्दू-मुसलमानों के स्थान-परिवर्तन और धार्मिक घृणा के कारण देश में भयंकर साम्प्र-दायिक दंगे हुए, भीषण रक्तपात हुआ । करोड़ों लोगों को अपनी धन-सम्पत्ति व अपने परिवारों से अलग हो जाना पड़ा । जनता का विश्वास भंग हो गया और अशांति का चारों ओर साम्राज्य हो गया । पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे की बात सुनकर जगत कुलसुम के साथ दिल्ली पहुँचता है । लाला देवराज जसवन्त के ससुर थे, उनकी बड़ी जमीन जायदाद लाहौर में थी वह अपनी जन्मभूमि छोड़कर दिल्ली नहीं आना चाहते थे । संयम और अपने रोबदाब के कारण उन्हें विश्वास था कि मुसलमान उनका कुछ नहीं बिगाड़ेंगे लेकिन उनका विश्वास भी भंग हो जाता है, नफरत की आग में उनकी हवेली सुलग जाती है और उसी में वह भी राख का ढेर बन जाते हैं । जसवन्त की पत्नी शर्मिष्ठा को पिता की मृत्यु से बड़ा सदमा पहुँचता है , जगत शर्मिष्ठा की पीड़ा में करोड़ों नर-नारियों की व्यथा का अनुभव करता है जिन्होंने बटवारे की भट्टी में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया था । साम्प्रदायिक घृणा का जहर देश के कोने-कोने में फैल गया था - गांधी जी दिल्ली में प्रार्थना सभा में अहिंसा और प्रेम का प्रवचन देते थे, हिन्दुओं की भर्त्सना भी करते थे -

उनकी साम्प्रदायिकता के लिए, लेकिन अब क्या हो सकता था, राजनीतिक नेताओं की सत्ता और शक्ति की भूख ने देश का कितना बड़ा अहित कर डाला था - इसी क्लेश और घृणा के वातावरण में गाँधी जी के प्रवचनों का उल्टा ही असर पड़ता था। 'रास्ता चलते ट्रामों पर, बसों पर लोग महात्मा गाँधी को भला-बुरा कहते थे। नफरत से भरा जन-समुदाय प्रेम, दया और अहिंसा का पाठ सुनने को तैयार नहीं था।'[1] गाँधी जी ने यह सब देखा, साम्प्रदायिकता दूर करने के लिए अनशन किया। इससे स्थिति में काफी सुधार भी हुआ लेकिन महात्मा जी भी निराश हो चुके थे, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल के मतभेद बढ़ते जा रहे थे। 'देश का विगठन हुआ, मानवता का विगठन हुआ, मूल्यों का विगठन हुआ और महात्मा गाँधी नितांत निरुपाय-से सब देखते रहे -मर्माहत से।'[2] गाँधी जी के मन-प्राण में एक पीड़ा समा गयी थी, उनकी जीने की इच्छा समाप्त हो गयी थी। जगत कि०१२०००० भी देश की इस दयनीय अवस्था से टूट चुका था, उसकी भी जीवित रहने की इच्छा समाप्त हो गयी थी, फिर भी वह आस्थाओं को फिर से बटोरने, विश्वास को पुनर्जीवित करने का उपक्रम कर रहा था तभी उसे महात्मा गाँधी की हत्या की खबर मिली। वह अपने उपक्रम में सफल नहीं हो सका। गाँधी जी की हत्या के समाचार ने उसके प्रयत्न को तोड़ डाला था और इसीलिए वह भी टूट गया इस बार टूटन चिरनिद्रा में परिवर्तित हो गयी।

जगतप्रकाश जो स्वातंत्र्य संघर्ष के दिनों के 'युवक मन का दर्पण'[3] था, उसकी जीवनयात्रा का यह संक्षिप्त विवरण है, जो 'सीधी सच्ची बातें' में दिया गया है। इस यात्रा में जगत के गाँव का जमील अहमद प्राय: उसके साथ रहा। जमील अहमद उसका ऐसा प्रौढ़ मित्र था जो जगत की समस्याओं को सुनता था, उसके अनुभवों को सुनता था और उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता था। दोनों साथ-साथ अनेक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे, तर्क-वितर्क करते थे और समस्या का निदान ढूँढ़ने का यत्न करते थे। वही जमील अहमद उसे अंतिम समय में बड़ी निर्ममता से छोड़कर चला गया। यह जगत के जीवन की एक बहुत बड़ी व्यथा थी और यथार्थत: यह भारतीय जनमानस की बहुत बड़ी विडम्बना है जिसका हल अब शायद कभी नहीं हो पायेगा। इसी भारतवर्ष में हिन्दू-मुसलमान

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 681

2- वही- पृ० 682

3- देखिए- 'प्रकाशन समाचार' - अप्रैल 1964, पृ० 20

साथ-साथ रहते थे, किन्तु अँग्रेजों की कूटनीति और भारतीय नेताओं की नादानी के कारण हिन्दू-मुस्लिम समस्या एक ऐसा रिसता घाव बन गया भारत और पाकिस्तान के लिए, कि जिसका कोई इलाज नहीं। इसे वर्मा जी ने बड़े ही प्रतीकात्मक और मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है।

जगतप्रकाश के सभी अन्य साथी उच्च शिक्षा प्राप्त युवा पीढ़ी के हैं, अत: जब कभी एकत्र होते हैं तो उनमें राजनीति, धर्म और अर्थ पर खुले दिल से चर्चा करते हैं। इन सभी चरित्रों के माध्यम से वर्मा जी ने देश की अनेक समस्याओं पर अपने विचारों के पक्ष-विपक्ष को प्रस्तुत किया है। जमील अहमद यद्यपि बहुत पढ़ा लिखा नहीं है तथापि उसने अनुभव की पाठशाला से विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के क्रमिक विकास का तिथिगत ब्यौरा अधिकांशत: लेखक द्वारा दिया गया है तथापि उसका विश्लेषण इन्हीं पात्रों के माध्यम से किया गया है। विश्व-युद्ध का विश्व के विभिन्न देशों पर क्या प्रभाव पड़ता था उसका ब्यौरेवार चित्रण 'सीधी सच्ची बातें' में किया गया है। इसके अतिरिक्त गांधी जी की अहिंसा, हिन्दू वर्ण-व्यवस्था, भारतीय अर्थ-व्यवस्था, आधुनिक शिक्षा पद्धति, देश में प्रान्तीयता की भावना के कारण परस्पर वैमनस्य, पौराणिक गाथाओं के आर्थिक पहलू, जमींदारी प्रथा तथा कांग्रेसी शासन की अनितियाँ, पूँजीवाद, मुस्लिम समुदाय की विशिष्टता व्यक्ति और समाज, आदि विषयों पर बड़ी तार्किक और सटीक ~~विवरण~~ व्याख्या की गई है। हिंसा-अहिंसा का अन्तर्द्वन्द्व उपन्यास में ~~इसके~~ इस बुरी तरह छा गया है कि कहीं-कहीं उसकी पुनरावृत्ति खटकने लगती है। 'अहिंसा का अफीम खिला-खिलाकर गाँधी जी हमें संज्ञाहीन बना रहा है।'[1] यह बात तत्कालीन युवक समुदाय के मन में भर गयी थी इसीलिए वे अहिंसा की ~~बब~~ चर्चा आने पर आवेश से भर उठते थे, किन्तु बार-बार उसी बात को दोहराने से ऐसा प्रतीत होता ~~है~~ जैसे लेखक उपन्यास के पृष्ठों की संख्या बढ़ाने की चेष्टा कर रहा है। अधिकांशत: अहिंसा को 'कायरता' की संज्ञा दी गई है और अहिंसा को अपनाने वाले देश को 'मुर्दों का देश' कहा गया है तथापि एक स्थान पर हिंसा और अहिंसा पर वर्मा जी का दृष्टिकोण सराहनीय है जो सामंजस्यपूर्ण है। जगतप्रकाश अपने जीवनानुभव से संचित ज्ञान के आधार पर हिंसा-अहिंसा के समन्वय को स्वीकार करता है - वह उस हिंसा पर विश्वास करता

1- सीधी सच्ची बातें - पृ० 38

है, जो मानव कल्याण के लिए आवश्यक है और उस अहिंसा पर अविश्वास करता है, जो मनुष्य में कायरता और नपुंसकता भर दे । इसी मंतव्य की पुष्टि करते हुए जसवन्त सुभाष की हिंसा को सिद्धान्त: मानते हुए गांधी जी की अहिंसा की छत्रछाया में हिंसात्मक संगठन के विकास का निर्णय लेता है । अहिंसा के मत की व्यर्थता सिद्ध करने के लिए ही `व्यक्ति और समाज` की चर्चा भी बार-बार की गई है । व्यक्ति के रूप में गाँधी जी ने अहिंसा को अपनाया,जिस प्रकार गौतम बुद्ध और महावीर आदि महात्माओं ने अपनाया था । उनकी यह व्यक्तिगत अहिंसा पूजनीय बन सकती थी और शायद वह बड़ी दूरदर्शि० दूर-दर्शिता और सामयिक सूझ-बूझ की बात थी क्योंकि ब्रिटिश हिंसा संगठित थी,उसका मुकाबला हमारे असंगठित समाज की हिंसा नहीं कर सकती थी । किन्तु इस वैयक्तिक गुण को सम्पूर्ण भारतीय समाज पर थोपना कोई सूझ-बूझ वाला कदम नहीं था । क्योंकि क्षणिक और अस्थायी आवेगों से भरा जनमत बड़ा भ्रामक होता है,उससे इतने बड़े सिद्धान्त के पालन की आशा व्यर्थ है, वह आज गाँधी जी के सिद्धान्तों की पूजा कर सकता है तो उससे घृणा भी कर सकता है । हिंसा-अहिंसा, और व्यक्ति और समाज को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने के अतिरिक्त `सीधी सच्ची बातें` में अर्थ और राजनीति को आज के युग में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया गया है ।`यह खाना कपड़ा-यह राजनीति है, यह अमीरी-गरीबी-यह राजनीति है । सब कुछ सिमटा हुआ है इस राजनीति में, हमारी सारी जिन्दगी इस राजनीति के मुताबिक ढलती है ।`[1] और यह राजनीति भी अर्थ में समाहित है । `यह अर्थ, यही मानव-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है । इसी अर्थ में समाजशास्त्र है, इसी अर्थ में समाजशास्त्र है, इसी अर्थ में राजनीति शास्त्र है, इसी अर्थ में धर्मशास्त्र है ।`[2] लेकिन `इस अर्थ के प्रेरक तत्व से भी अधिक शक्तिशाली प्रेरक तत्व घृणा है ।`[3] इसी प्रकार `सीधी सच्ची बातें` में अनेक विचार-सरणियाँ हैं, जिनसे वर्मा जी के गंभीर चिंतन की झलक मिलती है । वर्मा जी अपनी उच्च शिक्षा में अर्थशास्त्र के अध्येता रहे हैं इसलिए इस उपन्यास में अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों की चर्चा अर्थशास्त्र के प्रोफेसर शर्मा और जगतप्रकाश के माध्यम से की गई है, जिनमें उनके मौलिक मनन के भी दर्शन हो जाते हैं । इस उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान समस्या के अनेक पहलुओं पर विचार

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 236

2- वही- पृ० 260

3- वही- पृ० 336

चित्रित किया गया है। अंग्रेजों ने स्वार्थ-साधन के लिए हिन्दू-मुसलमान की समस्या को खड़ा कर दिया। इसके अतिरिक्त मुसलमानों में स्वयं हिन्दुओं की हुकूमत से भय उत्पन्न हो गया था। " मुसलमानों ने करीब आठ सौ साल हिन्दुओं पर हुकूमत की है, उन्होंने हिन्दुओं से गुलामी करवाई है। उनकी करनी ही अब उनमें यह खौफ पैदा कर रही है।" इसी भय से बड़े पुराने समय से मुसलमान हिन्दुओं को जबर्दस्ती मुसलमान बना रहे थे और हिन्दुओं की सड़ी-गली जात-पाँत और छुआछूत की धर्म-व्यवस्था के कारण सफलता भी मिली थी फिर भी अपनी अल्पसंख्या के कारण उन्हें हिन्दुओं से शासित होने और अपने अन्यायों का बदला लिए जाने का भय था इसीलिए उन्होंने अंग्रेजों द्वारा उठायी इस कृत्रिम समस्या को सत्य रूप में स्वीकार कर लिया जिसमें हमारे नेताओं की अदूरदर्शिता ने और सहयोग दे दिया। वही समस्या भारत के लिए एक बहुत बड़ा दुःस्वप्न बन गयी जिससे स्यात् ही कभी मुक्ति मिल सके। इसी तरह की अनेक समस्याओं को लेकर देश की तत्कालीन स्थिति और पूर्वकालिक पीठिका का चित्रण तो लेखक ने किया ही है, भारत के भविष्य की चिंता भी साहित्य-स्रष्टा भगवतीबाबू ने को हुई है। उपन्यास में सबसे अधिक भय देश के पूँजीपति वर्ग से दिखता है। ये पूँजीपति देश की स्वतंत्रता केवल स्वार्थवश चाहते थे और कांग्रेस पार्टी की सहायता करते थे। वह जानते थे कि ब्रिटिश शासन के कारण देश का सारा व्यापार अंग्रेजों की व्यापारिक नीति से संचालित होता था जिसके कारण भारतीय व्यापारी को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था, दूसरी ओर विदेशी बहिष्कार के देशी व्यापारियों द्वारा निर्मित माल की खपत अधिकांशतः कांग्रेस-जनों द्वारा ही होती थी। इसीलिए ये पूँजीपति कांग्रेस का उच्च स्वर में समर्थन करते थे और खुले हाथ से दान देते थे। इस प्रकार एक तरह से कांग्रेस इन्हीं पूँजीपतियों के आर्थिक सहारे पर चल रही थी। इसीलिए जमील अहमद अपना भय व्यक्त करते हुए कहता है - खुदा न-खास्ता अगर हमारा देश स्वतंत्र हो गया तो देखना कि यहाँ पूँजीवाद का इतना नंगा नाच होगा कि लोग त्राहि-त्राहि कहने लगेंगे, बनियों का राज होगा देश में।"[2]

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में देख सकते हैं कि 'सीधी सच्ची बातें' में कांग्रेसी नेताओं के आपसी मनमुटाव, देश की जनता की निष्क्रियता और उदासीनता तथा युवा-वर्ग की भटकन को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में देश की तत्कालीन स्थिति को

1- सीधी सच्ची बातें- पृ0 179

2- वही- पृ0 120

प्राचीन भारत के आर्थिक और धार्मिक ढाँचे के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है तथा भविष्य की स्थिति का पूर्वाभास भी प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास आकार में वृहद्काय है और उसमें बुद्धिवादी चरित्रों के तर्क-वितर्कों के कारण इतना फैलाव है कि सभी घटनाओं और विचारावलियों का क्ष संक्षिप्त परिचय भी देना संभव नहीं है, अतः यहाँ उपन्यास की मुख्य-मुख्य बातों को जगतप्रकाश की अनुभव यात्रा के माध्यम से दे दिया गया है।

'सीधी सच्ची बातें' में ऐतिहासिक घटनाओं, तिथियों, तथ्यों और इनके साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के सदस्यों के तर्क-वितर्क को इतने विस्तार से प्रस्तुत किया गया है कि कभी-कभी इसके इतिहास ग्रंथ होने का भ्रम होने लगता है जो बड़ी ही सरस शैली में लिखा गया है। कहीं-कहीं वाद-विवाद का क्रम इतना लम्बा खिंच जाता है कि राजनीति और भारत के अतीत इतिहास में रुचि लेने वाला पाठक ही इन अंशों के अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकता है। तथापि विषय वैविध्य और अपनी रोचक शैली के कारण प्रस्तुत कथाकृति किसी भी पाठक को अपने में रमा सकती है - इसमें कोई सन्देह नहीं और यही 'सीधी सच्ची बातें' की रचनात्मक उपलब्धि है।

<u>सबहिं नचावत राम गोसाईं</u> :- प्रस्तुत उपन्यास सन् 1970 ई० में प्रकाशित हुआ। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में भारत के पूँजीपति, मंत्रीवर्ग और अफसरों की कथा व्यंग्य-शैली में लिखी गई है। उपन्यास चार भागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग का नामकरण उस विभाग के फलभोक्ता के नाम और उसके आधार पर किया गया है। पहला भाग 'राधेश्याम-बुद्धि' शीर्षक का है अर्थात् वह राधेश्याम के पूर्व इतिहास और संस्कारों से सम्बंधित है, यह बुद्धि का ही करिश्मा है कि एक परचूनी घासीराम का पोता देश का एक बड़ा पूँजीपति बन जाता है और एक पूरे प्रदेश की राजनीति उसके इशारे पर चलती है। दूसरा शीर्षक है 'जबरसिंह-भाग्य'। भाग्य की कैसी अनुकम्पा है जबरसिंह पर कि वह एक कुख्यात डाकू का पोता होते हुए भी एक प्रदेश का गृहमंत्री बन बैठता है और अपने तुच्छ संस्कारों को अपनी नीति बनाकर पूरे प्रदेश के भाग्य के साथ खिलवाड़ किया करता है। 'रामलोचन-उठा-पटक' में एक ब्राह्मण परिवार की कथा है। पंडित रामसमुझ के साहस-पूर्ण संस्कारों का ही प्रताप है कि उनका पोता रामलोचन अपनी उठापटक से गृहमंत्री के घर में प्रवेश पाकर एक बड़े शहर का कोतवाल बन गया। उसमें किसी प्रकार का भय नहीं है और सबको चौंका देनेवाला कोई साहसपूर्ण कार्य करने की लालसा है। ये तीनों विभाग

एक तरह से उपन्यास की पृष्ठभूमि हैं। चौथा भाग ही मूल कथा है और वह है -`रामलोचन-भावना` । रामलोचन की भावना ही दृढ़-संकल्प से सहारा पाकर उसे इस योग्य बना देती है कि वह अपने प्रदेश के गृहमंत्री से टक्कर लेने की शक्ति अपने अन्दर अनुभव करता है ।बुद्धि, भाग्य और भावना को बनिया,क्षत्रिय और ब्राह्मण परिवारों से जोड़कर वर्मा जी ने उसे पर्याप्त सार्थकता प्रदान की है ।

इन तीनों कथाओं को अलग-अलग रखने का रहस्य चौथे भाग में अनावृत होता है जबकि इन तीनों कथाओं के नायक एक साथ उपस्थित दिखाई पड़ते हैं । देश स्वतंत्र हुआ, देश में कांग्रेस का राज्य स्थापित हुआ । जिस कांग्रेस ने देश को स्वतंत्र कराने के लिए स्वतंत्रता संग्राम छेड़ा था, उस कांग्रेस के सत्तारूढ़ होने पर जनता को उससे बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं । किन्तु जनता का स्वप्न साकार नहीं हो सका क्योंकि देश के शासन-तंत्र के पर्दे के पीछे जो खेल चल रहा था वह सिर्फ स्वार्थ साधन के लिए था, जनता के उपकार की चिंता किसे थी । पूँजीपति और नेतागण स्वार्थसिद्धि में एक दूसरे के पूरक थे, बुद्धि (राधेश्याम -पूँजीपति) और भाग्य(जबरसिंह-नेता) आपसी साठगाँठ करके अपना-अपना उल्लू सीधा करने में तल्लीन हो जाते हैं वह भावना को भी अपने मिशन में शामिल कर लेना चाहते हैं किन्तु भावना और बुद्धि का कोई तालमेल कभी बैठा नहीं, इसीलिए भावना बुद्धि के अनेक प्रलोभनों के पश्चात् उनसे छिटककर अलग हो जाती है । इतना ही नहीं वह अपने दृढ़-निश्चय के आधार पर बुद्धि और भाग्य को अपने कब्जे में कर लेती है । अर्थात् राधेश्याम और जबरसिंह रामलोचन को कभी अपने चंगुल में नहीं फँसा पाते वरन् उन दोनों को ही रामलोचन की सच्ची भावना से अपमानित होना पड़ता है यही प्रस्तुत उपन्यास के कथानक का मूल स्रोत है ।

लाला घासीराम एक सामान्य परचूनी थे । उन्होंने अपना सारा जीवन डांडी मारकर, कम तौलकर, एक-एक पैसा दाँत से पकड़कर और रुखा-सूखा खाकर बिताया था । वह अपने पुत्र मेवालाल से भी यही आशा करते थे किन्तु मेवालाल अपने जातिगत संस्कारों के अनुसार रुपये को देवता मानकर भी सम्पत्ति के उचित उपयोग को जानता था -उसका कहना था- `भगवान मेवा देता है खाने को तो क्यों घास-पात खाया जाय ।`[1] किन्तु ऐसा भी नहीं था कि मेवालाल रुपया यूँ ही गुलछर्रे उड़ाने में खर्च कर रहा हो ।अपनी चालाकी

1- सबहिं नचावत राम गोसाई- पृ० 23

से उसने थोड़े दिनों में अच्छी-खासी जायदाद खड़ी कर ली थी। जरूरतमंद मुंशी शीतला-सहाय से कौड़ी के मोल उनकी हवेली खरीदकर उसने पक्का दोमंजिला मकान बनवा लिया था और जनता के धार्मिक तत्व को उकसाकर म्युनिसपल बोर्ड की जमीन पर कब्जा करके एक बड़ा मंदिर बनवा दिया था जिसमें लम्बा-चौड़ा चढ़ावा चढ़ता था। उनके यहाँ महाजनी का विशाल पैमाने पर कारोबार चलने लगा था और इस सबको सम्हालने के लिए उन्होंने तीन मुनीम रख लिए थे - एक मुनीम जाली बही खाते और दस्तावेज बनाता था दूसरा व्याज का हिसाब-किताब रखता था और तीसरा मुनीम दिन-भर कचहरी में रहकर मुकदमेबाजी करता था। मेवालाल का सारा काम जालसाजी, धोखाधड़ी और बेइमानी पर आधारित था किन्तु मेवालाल पर तनिक भी आँच नहीं आती थी क्योंकि वह पुलिस के अफसरों की सेवा में कभी कुताही नहीं बरतते थे। इतना सब होने पर भी घासीराम की इच्छा थी कि उनका पोता डांडी मारेगा और कम तौलेगा, इस बात को सुनकर मेवालाल आपे से बाहर हो गए थे और उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वह अपने बेटे को विलायती ढंग से पढ़ायेंगे, क्योंकि - "दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही है। तो जालस्बट्टा, लूट-खसोट और बेइमानी में हम हिन्दुस्तानी विलायत वालों से बहुत पीछे हैं, यानी हमारे तौर-तरीके सब ऐसे हैं कि आसानी से धर लिए जायँ।"[1] तो घासीराम के परिवार में इस बेईमानी की परम्परा का क्रमिक विकास इस रूप में हो रहा था कि बेईमानी का पैमाना निरंतर बढ़ रहा था लेकिन वह अपने हाथ से न होकर दूसरों के हाथ से कराई जाती थी ताकि उधर वह पकड़ ली जाय तो दंडित दूसरे लोग हों और इस विशेषता को हम राधेश्याम में चरम सीमा पर पहुँचा हुआ पाते हैं।

मेवालाल राधेश्याम को आई० सी० एस० आफीसर बनाना चाहते थे इसीलिए उन्होंने राधेश्याम को विलायत भेजा किन्तु राधेश्याम अपने जातिगत बंधे व्यापार की उपेक्षा नहीं कर सका। अपनी विलायत-यात्रा के बीच उसका परिचय बम्बई के उद्योगपति जैसुखलाल से हो जाता है और वह आई० सी० एस० आफीसर न बनकर मिल खोलने का निर्णय ले लेता है। वह अपने बुद्धि-चातुर्य से जैसुखलाल की मिल की मशीनें सस्ते दाम पर दिलवा देता है और उसके बदले उससे कर्ज लेकर अपने लिए भी आटे की मिल की मशीन का

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 25

की बंदोबस्त करके विलायत से लौट आता है । जैसुखलाल के पास अनुभव थे और उन अनुभवों और अपने पैतृक गुण-व्यापार बुद्धि से राधेश्याम अपना व्यापार बढ़ाना शुरू कर देता है । इसी बीच उसका विवाह कानपुर शहर के एक प्रसिद्ध मिलमालिक मोतीलाल की लड़की गंगादेवी से हो जाता है जो लक्ष्मी का अवतार थी - ऐसा विचार लोगों का था राधेश्याम अपनी तत्परता और श्रम से प्रभावित करके अपने ससुर की मिलें भी हथिया लेता है । विश्वयुद्ध का वह समय था-इसलिए शहर का सारा सड़ा-गला गेहूँ राधे की मिल में पिसकर सेना के जवानों के पेट में जाने लगता है क्योंकि राधे ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और विलायत हो आने की योग्यता से प्रभावित करके सेना के अफसरों से मित्रता कर ली थी इसलिए आटे की सारी सप्लाई उसके हाथ आ गई थी । आठ हजार मन आटे की सप्लाई करके दस हजार मन के दाम वसूलना उसके बाएँ हाथ का खेल था । अफसरों और क्लर्कों को खुश करके शहर की बंद पड़ी मिलों को उसने आधे दामों में खरीद लिया और अपने छोटे भाई सीताराम को फौज की ठेकेदारी का काम दिलवाकर आसाम भेज दिया । द्वितीय महायुद्ध में विजय पाने के लिए ब्रिटेन रुपया पानी की तरह बहा रहा था,उस रुपये को बटोरने के लिए बुद्धि की आवश्यक्ता थी और उस बुद्धि की राधे में कमी नहीं थी । राधे एक-के बाद एक मिलें खरीदकर उत्पादन बढ़ा रहा था और उसकी खपत उसके भाई सीताराम की ठेकेदारी के माध्यम से हो रही थी । इस तरह लक्ष्मी राधे के घर में दौड़ती चली आ रही थी । उस लक्ष्मी को कैद करने का स्थान भी राधेश्याम को जैसुखलाल से पता चल गया था । बेईमानी से बने मन्दिर में बेईमानी और बुद्धि कौशल से एकत्रित धन को एकत्रित किया जा रहा था क्योंकि किसी प्रकार की लूट-पाट होने पर भी उस सम्पत्ति के लूट जाने का भय नहीं था - मन्दिर पर हाथ लगाने की हिम्मत किसे होती ।

राधेश्याम मुनाफाखोरी और ब्लैकमार्केटिंग से पूँजी एकत्रित कर रहा था,दूसरी ओर खद्दर के कपड़े पहनकर और कांग्रेस को बड़े-बड़े चन्दे देकर कांग्रेस कमेटी का कोषाध्यक्ष बन गया था । उसने सिविल लाइन्स में एयरकण्डीशन्ड बंगला भी बनवा लिया था । नेताओं से आर्थिक सौदा करके अपना काम निकलवाना उसके बाँये हाथ का खेल था -इसी तरह उसने अपने निठल्ले साले कुंदनलाल को एक सांस्कृतिक शिष्टमण्डल का सदस्य बनवाकर विदेश भ्रमण पर भेज दिया । कुंदनलाल के माध्यम से बात करके और प्रदेश के गृहमंत्री जबरसिंह को पटाकर उसने जर्मन सरकार की सहायता से पाँच करोड़ रुपये की लागत का

हैवी एलेक्ट्रिकल वर्क्स का कारखाना खोल लिया और राघे अपने बुद्धि-बल के सहारे संसार के प्रमुख उद्योगपतियों में से एक बन गया ।

सम्पत्ति-अर्जन के साथ दान देने में भी राघे किसी प्रकार की कंजूसी नहीं बरतता था किन्तु उसके पीछे भी उसका एकमात्र उद्देश्य था प्रसिद्धि प्राप्त करना ।

कुँवर नाहरसिंह राठौड़ को बीस बीघे की खेती के बल पर शानदार हवेली में राजसी वैभव के साथ रहने और हाथी बाँधने का करिश्मा पता था । यह हवेली उन्होंने महिधर राठौड़ से राठौड़ बंशावली सहित खरीद ली थी अर्थात् वह पेशेवर डाकू थे किन्तु एक बार डकैती के साथ हत्या के जुर्म में पकड़े जाने के भय से भाग पड़े थे किन्तु संयोगवश उनका सामना भूधर राठौड़ से हो गया, जो कलकत्ते में जुए का अड्डा चलाकर धनी बन गये थे और अपनी जमीन जायदाद बेचकर स्थायीरूप से वहीं बस जाना चाहते थे । उन्हीं से यह हवेली खरीदकर और ठाकुर महिधर राठौड़ का वंशज बनकर नाहरसिंह निःशंक महेपुर ग्राम के निवासी बन गये । उनका दूसरा डाकू साथी भी वहीं पहुँच गया और इस प्रकार नाहरसिंह का पुराना धन्धा फिर चल निकला । नाहरसिंह ने अपना घर बसाया भमरी बेड़िन को ठकुराइन भानमती बनाकर । भमरी अपने जातिगत पेशे के कारण साहस में नाहरसिंह से कम नहीं थी । नाहरसिंह और गनेसी साल में सिर्फ तीन या चार डाके बड़ी जुगत के साथ अपने इलाके से दूर बड़े-बड़े आसामियों के यहाँ डालते थे, इस तरह उनकी आर्थिक स्थिति उनके सम्मान की वृद्धि कर रही थी । नाहरसिंह ने अपने पुत्र केहरसिंह की शिक्षा-दीक्षा का भार पुरोहित छोटेलाल पर डाल दिया था तभी एक डाके में उनकी मृत्यु हो गई - नटिन भमरी बड़े जीवट वाली स्त्री थी वह रोई न चिल्लायी-नाहरसिंह का शव एक झोपड़ी में रखकर उसमें आग लगवा दी - प्रसिद्ध हो गया कि नाहरसिंह झोपड़ी की आग में जलकर स्वर्गवासी हो गये उनकी प्रतिष्ठा को आँच नहीं आ पायी ।

केहरसिंह पण्डित छोटेलाल की देखरेख में सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा ले रहे थे और इसीलिए छोटेलाल उन्हें अपने पुत्र जैसा मानते थे । छोटेलाल पण्डित ने ही केहर का विवाह एक उच्चकुलीन क्षत्रिय जो पैसे से कमजोर थे करवा दिया । केहरसिंह की पत्नी लक्ष्मी के पिता रघुराजसिंह उच्च विचारों के एक साधारण प्राध्यापक थे उन्हीं के विचारों को लक्ष्मी ने परम्परा के रूप में पाया था । लक्ष्मी ससुराल में आयी तो उसे अपने घर का एक-एक रहस्य ज्ञात होने लगा । यहाँ तक कि अपनी सास के दुश्चरित्र होने का भी

उसे ज्ञान हो गया, किन्तु वह मुँह सिए रही । गनेसी, जो नाहरसिंह का पुराना साथी था और अब नाहरसिंह के घर का एक सदस्य ही बन गया था, अपने मित्र की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने देना चाहता था । इसलिए उसने ममरी पर लट्टू बाबा सहोदरानंद और ममरी दोनों को किनारे लगा दिया । अब लक्ष्मी ने निर्भय होकर अपने पुत्र जबरसिंह की शिक्षा-दीक्षा की ओर एक लक्ष्य करके पण्डित छोटेलाल के हाथों उसे सौंप दिया । जबरसिंह कुशाग्रबुद्धि का बालक था और प्रारम्भिक कक्षाओं में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होता जा रहा था किन्तु अपने नाम के अनुकूल और अपने बाबा के पेशे के अनुरूप उसमें जबराई और उद्दंडता के गुण तेजी से विकसित हो रहे थे साथ ही अपने मित्रों के बीच लूट-खसोट और छीना-झपटी से भी बाज नहीं आता था । और इस लूट के लिए उसके तर्क दर्शनीय थे - परमेसुर-साहु के लड़के से यह कहकर सौ रुपये छीन लेना कि महात्मा गाँधी का हुकुम है कि विलायती कपड़े का बहिष्कार हो (रमेसुर उन रुपयों से कपड़ा खरीदने जा रहा था) इस बात का सर्वोत्तम उदाहरण । इसके बाद भी उसकी ढिठाई का परिचय तब मिलता है जब पिता के अत्याधिक मारने पर भी वह माफी नहीं माँगता है और न मार का विरोध करता है । बेटे को बिगड़ता देखकर उसकी माँ उसे अपने भाई के पास भेज देती है ।

जबरसिंह अपने मामा के पास रहकर पढ़ने लगा और साथ ही अपने मामा रघुराजसिंह के घर में होनेवाली मीटिंगों से राजनीति की शिक्षा भी लेने लगा । उसमें यहाँ एक नया गुण विकसित हुआ सेवा का । उसकी सेवा और कुशाग्रता से उसके मामा के कांग्रेसी मित्र बहुत प्रसन्न थे विशेषतया कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सदाशिव गौतम तो उससे बहुत ही प्रभावित थे । उसने चुनाव के समय गौतम जी की सहायता अपनी तुरंत-बुद्धि से से की और गौतम जी ने उसे नगर कांग्रेस कमेटी का उपमंत्री बना दिया । जबरसिंह का अध्ययन चल रहा था और राजनीति में उसकी रुचि बढ़ रही थी । वह गौतम जी के साथ बम्बई गया जहाँ ए० आई० सी० सी० की मि मीटिंग में 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास हुआ था । वहाँ से जबरसिंह गाँधी जी का 'करो या मरो' का नारा लेकर लौटा । आगरा लौटने के बाद रेल की पटरियाँ उखाड़ते हुए गिरफ्तार कर लिया जाता है । और उसे सात साल की सजा हो गयी । सात साल बाद 1945 में जब जबरसिंह जेल से छूटा तो नगर में कांग्रेस के सक्रिय नेता के रूप में उसका बड़ा स्वागत किया गया और इसका लाभ उठाया [illegible] जबरसिंह ने । वह 1946 में आम चुनावों में युक्तप्रांत की असेम्बली की सदस्या के लिए खड़ा हो गया और जीत भी गया । जबरसिंह का भाग्य

इतना प्रबल था कि इस चुनाव में जिन रायबहादुर गम्भीरसिंह को परास्त किया,वही उससे इतने प्रभावित हुए कि उससे अपनी लड़की का विवाह भी कर दिया ।

इधर जब जबरसिंह अपने दावपेंचों से राजनीति में आगे बढ़ता जा रहा था और धनवन्ती तो मानो उसे भाग्यलक्ष्मी के रूप में ही मिल गयी थी, इसीलिए जबरसिंह उसका सम्मान भी करते थे । किन्तु धनवन्ती को जबरसिंह की इस विश्वासघात की राजनीति से बड़ी घृणा और ग्लानि होती थी जबरसिंह धनवन्ती को ईमानदारी और आलोचना से सहमत भी थे किन्तु वह अपने संस्कारों से मजबूर थे । उनकी धारणा थी कि आदर्शवाद केवल एक नारा है और असली चीज है सत्ता की रक्षा । इसीलिए उन्होंने 1957 ई०के आमचुनावों में गौतम जी को हरवा दिया और स्वयं उनके स्थान पर गृहमंत्री का पद प्राप्त कर लिया । इन्हीं सदाशिव गौतम ने उन्हें राजनीति में प्रतिष्ठित किया और जब उन्हीं को जबरसिंह ने नहीं बख्शा तो गौतम जी को बहुत धक्का लगा और उन्होंने खाट पकड़ ली तथा धनवन्तकुँअर को भी जबरसिंह के इस विश्वासघात से बहुत दुख हुआ ।

पण्डित रामसमुझ पाण्डे कर्मकाण्डी पंक्तिपावन सरयूपारीण ब्राह्मण थे । एक विदेशी महिला सिल्विनिया को शुद्ध करके और हिन्दू बनाकर उन्होंने ताल्लुकेदार राजा पृथ्वीपालसिंह को प्रसन्न कर लिया था । राजा साहब ने इसके पुरस्कार के रूप में उन्हें बड़ी जमींदारी लिख दी । पण्डित रामसमुझ को जमींदारी का कोई अनुभव तो था नहीं, वह राजा साहब के साथ ऐशोआराम में अपना समय व्यतीत करने लगे और उनकी जमींदारी उनके ससुर पंडित कमलनयन की प्रबंध कुशलता के कारण बढ़ने लगी । राजा पृथ्वीपालसिंह के कारण रामसमुझ का परिचय लाटसाहब से भी होता है और लाटसाहब पंडित जी की विद्वता और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हें राजा का खिताब और अवध की ताल्लुकेदारी भी प्रदान कर देते हैं । इस प्रकार थोड़े समय में ही राजकृपा के रूप में पंडित रामसमुझ भी युक्तप्रांत के जाने-माने ताल्लुकेदार बन जाते हैं ।

लेकिन यह जमींदारी रामसमुझ को जितने अप्रत्याशित रूप में मिली थी उसका विनाश भी हो जाता है और उनका लम्बा चौड़ा परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है । रामसमुझ के बड़े पुत्र रामसिंहासन चुनाव में खड़े होते हैं किन्तु उन्हें हार ही गले लगाना पड़ता है और इस चुनाव की हार से उनके घर की आर्थिक स्थिति को बड़ा धक्का लगता है । पंडित रामसमुझ का दूसरा पुत्र विलायत चला गया था । वहाँ से लौटकर जब वह

जमींदारी में अपना हिस्सा चाहता है तो पूरे परिवार में खलबली मच जाती है उसकी विदेशी पत्नी को लेकर । बात बढ़ते-बढ़ते मुकदमेबाजी तक आती है । इधर रामसमुझ का मंझला पोता घर की सारी नकदी हड़पकर वेश्या प्रेमिका के साथ विदेश चला जाता है । रामसमुझ के बड़े पोते की फिजूलखर्ची उसके घर की स्थिति और खराब कर देती है। इस प्रकार फिजूलखर्ची, जमींदारी उन्मूलन, मुकदमेबाजी और पारिवारिक विग्रह विग्रह के कारण रामसमुझ का परिवार पुन: अपनी वास्तविक स्थिति को पहुँच जाता है अब रामसमुझ का सबसे छोटा लड़का रामलोचन रह जाता है जो पढ़ने में महा कमजोर लेकिन साहसी और० प्रभावशाली और खेलकूद में हमेशा नाम कमाने वाला है ।

राजा पृथ्वीपालसिंह के पौत्र महिपालसिंह की सिफारिश से रामलोचन को थानेदारी मिल जाती है क्योंकि उनकी फुफेरी बहन धनवन्ती प्रदेश के गृहमंत्री की पत्नी थीं । गृहमंत्री जबरसिंह की पत्नी रामलोचन को अपने बेटे से भी बढ़कर मानने लगीं और जबरसिंह के घर में उसका मान बढ़ गया । पुलिस विभाग के सब लोग जानते थे कि रामलोचन जबरसिंह का व आदमी है । इसलिए उससे सब खुश थे फिर रामलोचन के हँसमुख, साहसी और खिलाड़ी व्यक्तित्व के कारण डी०आई०जी० पुलिस ज्ञानेन्द्रनाथ मिश्र उससे बड़े प्रसन्न रहते थे । एक बार बहुत बड़े- पूँजीपति राधेश्याम को रोककर रामलोचन ने ज्ञानेन्द्रनाथ को पहले जबरसिंह से मिला दिया- इस घटना से ज्ञानेन्द्रनाथ इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे शहर कोतवाल बना दिया । इस प्रकार रामलोचन अपने सुन्दर व्यक्तित्व से प्रभावित करके और मंत्री के घर में घुसपैठ करके उच्च पद प्राप्त कर लेता है ।

यहाँ तक की कथा एक पृष्ठभूमि है, इन तीनों कथाओं की अन्तिम पीढ़ी चौथे खण्ड की कर्णधार है । और इनको केन्द्र बनाकर, उत्तरप्रदेश में चल रही राजनीतिज्ञों और पूँजीपतियों की साठ-गाँठ और स्वार्थसाधन की कथा कही गयी है जो थोड़े बहुत अन्तर से सम्पूर्ण भारत की कथा है । एक तरह से कहा जा सकता है कि आज भारत में चोर-बाजारी, मुनाफाखोरी, नेताओं की स्वार्थन्धता और पदलोलुपता का जो दौर चल रहा है, उसे व्यंग्य शैली में प्रस्तुत किया गया है । इनके साथ-साथ भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग में अवसर से फायदा उठाने, दूसरों को नीचे गिराकर स्वयं ऊपर उठने और पैसे के हाथ बिक जाने की जो प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है उस पर भी तीखा प्रहार किया गया है ।

राधेश्याम जबरसिंह के समक्ष लम्बी -चौड़ी लागतवाली कृषि अनुसंधान-शाला और ट्रैक्टर फैक्टरी की योजनाएँ लेकर जाते हैं और सरकार से पूरे सहयोग का वचन ले लेते हैं। इसके बदले में जबरसिंह कृषि अनुसंधानशाला के मैनेजर का पद अपने भाई हिम्मत सिंह के लिए प्राप्त कर लेते हैं। जब जबरसिंह मुख्यमंत्री त्यागमूर्ति के समक्ष यह योजना रखते हैं तो त्यागमूर्ति गाँधीवाद के अनुयायी होने के कारण ट्रैक्टर फैक्टरी का विरोध करते हैं वह०एफधेश्यवण किन्तु जैसे ही जबरसिंह उनको मुख्यमंत्री पद से हटवाने की बात करते हैं वह राधेश्याम की सारी योजना और सरकार के सहयोग की बात स्वीकार कर लेते हैं।

इसके बाद इन दोनों खर्चीली योजनाओं को पूरा करने के लिए उन सबको रुपयों से खरीदने का क्रम राधेश्याम द्वारा शुरू होता है, जिनके द्वारा इन योजनाओं की सफलता के मार्ग में रोड़ा अटकाने का भय राधेश्याम को था। कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के नेता कामरेड रवीन्द्र और श्री मार्तण्ड कृषि अनुसंधानशाला और ट्रैक्टर फैक्टरी के लिए भूमि अवाप्ति की बात का विरोध करते हैं तो उन्हें दो हजार रुपये देकर, चुनाव में सहायता का बचन देकर और कुछ अपनी पत्नी गंगादेवी के रूप - यौवन से कामान्ध बनाकर राधेश्याम इन दोनों का मुँह बंद कर देता है। प्रदेश के वित्त-मंत्री किसानों को जमीन का मुआवजा 3 हजार रु० प्रति एकड़ देने का वक्तव्य देते हैं तो जबरसिंह उन्हें वित्तमंत्री के पद से हटवा देने की बात कहकर उन्हें शान्त कर देते हैं। वित्त-मंत्री जटाशंकर वाजपेयी जबरसिंह की गीदड़भभकी से भयभीत होकर जमीन की कीमत 600)- प्रति एकड़ रखकर जबरसिंह से, समझौता तो कर लेते हैं किन्तु दूसरी और जबरसिंह को सलाह देते हैं कि भूमि अवाप्ति की बात को अभी टाल ही देना चाहिए क्योंकि इससे जनता में उनकी बदनामी हो सकती है और चुनाव का समय आ रहा है। चुनाव में इसका बुरा असर पड़ सकता है। अत: जबरसिंह मुआवजे की रकम बारह साढ़े बारह सौ देकर जमीन अनधिकारिक रूप से खरीद लेने की बात राधेश्याम से कहते हैं और सोचते हैं कि इतना अधिक रुपया न खर्च करने के कारण संभवत: राधेश्याम शायद कुछ दिन के लिए रुक जायँ। राधेश्याम इसका कुछ और ही अर्थ लेते हैं वह सोचते हैं कि संभवत: मंत्री जबरसिंह स्वयं कुछ पूजा प्राप्त करना चाहते हैं। राधेश्याम जबरसिंह की कोठी बनवाने में सीमेन्ट, लोहा, बिजली का सामान इत्यादि मुफ्त भिजवा चुके थे, चुनाव में सहायता

करते थे और उनके भाई को मैनेजर तक बना चुके थे इस बार उन्होंने अत्यधिक बहुमूल्य उपहार देकर जबरसिंह को खरीदने का निश्चय किया । वह एक बेशकीमती हीरे का सेट जबरसिंह की पत्नी धनवन्तकुँवर को भेंट करने की योजना बना लेते हैं । राधेश्याम की पत्नी गंगादेवी जब अपने घर खाने पर बुलाकर वह हीरे का सेट धनवन्तकुँवर को देती है तो धर्मपरायणा और स्वाभिमानिनी धनवन्तकुँवर सारी चाल समझकर वह सेट लेने से इंकार कर देती हैं । उन्हें इस घटना से बहुत क्लेश होता है । रामलोचन, जो अब तक उनके घर का सदस्य जैसा बन गयाथा, अपनी मुँहबोली बुआ के क्लेश और अपमान का बदला लेने का निश्चय कर लेता है । इसके बाद रामलोचन भावना के प्रवाह में आकर जबरसिंह के अनेक प्रयत्नों के उपरांत भी कैसे राधेश्याम को ब्लैक-मार्केटिंग और स्मगिलिंग के अपराध में गिरफ्तार करता है और अपने पत्रकार मित्र जैकृष्णा से रातों-रात यह खबर समाचार-पत्रों में छपवा देता है राधेश्याम के चित्र के साथ - यह पूरी घटना बड़े ही रोचक और चमत्कारिक ढंग से वर्मा जी ने प्रस्तुत की है ।

जबरसिंह रामलोचन के इस कृत्य से अत्यंत कुपित होते हैं और उसे नौकरी से निकलवा देने का निर्णय कर लेते हैं । रामलोचन अपने डी० आई० जी० के कहने से जबरसिंह से तो माफी माँग लेता है, किन्तु जब जबरसिंह राधेश्याम से माफी माँगने को कहता है, तो रामलोचन का ब्राह्मणत्व का स्वाभिमान जाग्रत हो उठता है और वह अपने पद से इस्तीफा दे देता है । इसके बाद रामलोचन के मित्र उसे जबरसिंह के ही विरुद्ध चुनाव लड़ने का सुझाव देते हैं और उसकी पूरी सहायता करते हैं - चुनाव अभियान में । रुपयों का अभाव होने पर धनवन्तकुँवर उसे रुपयों से भी सहायता पहुँचाती हैं और अंततोगत्वा भावना के इस चमत्कारपूर्ण खेल में रामलोचन बिजयी होता है, वह चुनाव में जबरसिंह को परास्त करके विधानसभा में विरोध-पक्ष का महत्वपूर्ण सदस्य बन जाता है । जबरसिंह दाँत किटकिटाकर रह जाते हैं ।

जटाशंकर अब मुख्यमंत्री बन जाते हैं और राधेश्याम जबरसिंह को छोड़कर उनकी सेवा में लग जाते हैं , कृषि अनुसंधानशाला और ट्रैक्टर फैक्टरी का मामला अटक जाता है क्योंकि जटाशंकर चाहते हैं कि कृषि अनुसंधानशाला वह राधेश्याम के हाथ से छीन लें, विदेशों में भी राधेश्याम की गिरफ्तारी की बात फैल चुकी थी इसलिए अमरीकी उद्योगपति मिस्टर मैंजीज ट्रैक्टर फैक्टरी को उलझाए थे । इस तरह उपन्यासकार का मत है कि यह सब चरित्र रामगोसाईं के इंगित पर नाच रहे हैं ।

जैसा कि शीर्षक से ही कुछ-कुछ झलक जाता है सम्पूर्ण `सबहिं नचावत राम गोसाईं` उपन्यास व्यंग्य से ही ओतप्रोत है। प्रत्येक चरित्र,उक्ति और घटना अपने परिवेश के पीछे व्यंग्य को उद्घाटित कर जाती है। उपन्यास में प्रत्येक पात्र का अवतरण उससे जुड़ी जाति और पेशे की विकृतियों,कुंठाओं पर तीव्र प्रहार करती है। कहीं- कहीं पर बात देखने में सीधी सरल प्रतीत होती है किन्तु उसकी तह में कहीं न कहीं कोई व्यंगार्थ अवश्य निहित होता है। वणिकों में, व्यापार करने वाले व्यक्तियों में बेईमानी और दूसरों को ठगने की वृत्ति इस तरह कूट-कूटकर भरी होती है कि वह उनकी आदत और चारित्रिक विशेषता बन जाती है, उसे वह स्वप्न में भी बुरा नहीं मानते। घासीराम और मेवालाल कितनी सरलता से निम्नोलिखित बातें कह जाते हैं, किन्तु उनके इस सरल कथन से बनियों की ठगवृत्ति का परिचय वर्मा जी की व्यंग्य शैली के ही कारण मिल जाता है। घासीराम अपने पोते राधेश्याम को गोद में खिलाते हुए कितनी सहजता से इच्छा रखता है -`मेरा तो कम्ती तौलेगा, मेरा तो डांडी मारेगा।`[1] मेवालाल तो अपने पुत्र को लेकर और बड़ी आशाएँ लगाए था। वह अपने पिता को डाँटते हुए कहता है -`यह राधे डांडी मारने और कम्ती तौलने के लिए नहीं पैदा हुआ है, यह तो माल काटेगा,माल। अब अगर इसके लिए यह सब कहा तो हम तुम्हें मारते-मारते बेदम कर देंगे।`[2]इसी माल को काटने के लिए वह राधेश्याम को विलायत भेजने का निर्णय करता है, वह भी इसलिए कि वहाँ जाकर राधेश्याम जाल-बट्टे, लूट -खसोट और बेईमानी कापाठ सीखकर आए। अपने पिता को डाँटना और मारते-मारते बेदम कर देने की बात कहना भी इस निम्न मध्यवर्ग की नीचवृत्ति को उद्घाटित कर देता है। और वास्तव में राधेश्याम अपने पितृकुल की आकांक्षाओं की साकार प्रतिमा बन जाता है - उसका एक-एक कृत्य, एक-एक योजना और एक-एक वाक्य उसकी मक्कारी और जालसाजी को व्यक्त करता है। उसके इस जातिगत गुण का विकास इस सीमा तक होता है कि बेईमानी और जालसाजी से इकट्ठी की गई करोड़ों की सम्पत्ति से हर किसी को खरीदने का अहंकार उसमें भर गया है किन्तु ऊपर से वह बहुत अधिक विनम्र और व्यवहार-कुशल भी दिखता है और जिससे काम निकालना हो उसके सामने सामना घिघियाने में उसे किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं होता।

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 24

2- वही- पृ० 24

प्रस्तुत उपन्यास के कुछ प्रसंग तो व्यंजना की अपूर्व क्षमता से भरे हैं। देश स्वतंत्र हुआ तो राधेश्याम ने उसे बड़े शानदार ढंग से मनाया-"उस दिन स्वतंत्रता के प्रथम दिवस वाले उत्सव को राधेश्याम ने जिस शान से मनाया, वह कानपुर नगर के इतिहास में अद्वितीय समारोह साबित हुआ। उसकी मिलों में पड़ा हुआ सड़ा आटा और गोदामों में भरा हुआ सड़ा तेल- इन सबका ठिकाना लग गया। दो दिन तक कंगालों को भोजन दिया गया, और सारे नगर में राधेश्याम की जय-जयकार होती रही। कंगालों के इस भोज के बाद कानपुर नगर में भिखमंगों और कंगालों की संख्या आधी रह गयी, आधे लोग राधेश्याम के सड़े भोजन के कारण अपने अति सड़े हुए जीवन से मुक्ति पा गये।"[1] भिखमंगों की सामूहिक मृत्यु में जनता की खलबली के संदर्भ में 'अद्वितीय समारोह' और जय-जयकार' शब्द कितनी गहन अभिव्यक्ति से युक्त है।

राधेश्याम अपने पिता भेवालाल की मृत्यु पर दस लाख रुपये का दान करवाता है "ताकि उनके स्वर्गलोक में जाने में किसी तरह की बाधा न पड़े।"[2] जीवन भर गरीबों का खून चूसकर पैसा इकट्ठा करनेवाले भेवालाल के लिए यह उक्ति कितनी व्यंग्यपूर्ण है। इस बेईमानी के पैसे के प्रति भी कितना मोह है राधेश्याम को। उस दान के पैसे से 'भेवा इन्स्टीट्यूट आफ पैरालिसिज़' खोला जाता है जो राधेश्याम की ख्याति-वृद्धि में सहायक होता है।

उपन्यास के थोड़े से पृष्ठों पर दिखनेवाले राजा पृथ्वीपालसिंह का चरित्र भी ताल्लुकेदारों की अय्याशी, चरित्रहीनता आदि अवगुणों पर व्यंग्य करने के लिए ही अवतरित किया गया है। इसी प्रकार राजा गम्भीरसिंह भी पतनोन्मुख जमींदारी प्रथा के प्रतीक है। इनके अतिरिक्त पंडित रामसमुझ पाण्डे, रामसिंहासन और रामउदित भी वर्मा जी के व्यंग्य के लक्ष्य बने हैं। नियम और कर्मकाण्ड की तपस्या के तेज से दीप्तित ब्राह्मण भी थोड़ी सी जमींदारी मिलने से ऐशोआराम में डूब जाता है और उनके लड़के तथा पोते भी अपने बाप-दादा के पूर्व इतिहास के सत्य को भूलकर फिजूलखर्ची और प्रदर्शन के जाल में फँसकर अपना और अपनी संतान का भविष्य नष्ट कर देते हैं। यह केवल रामसमुझ और उनके परिवार की कथा नहीं है यह सम्पूर्ण जमींदारों और ताल्लुकेदारों के

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 40

2- वही- पृ० 51

समाज की कथा है जिसे वर्मा जी ने बड़ी कुशलता से अभिव्यक्ति दी है। इसी प्रकार साहित्यकारों पर भी कवि फंफावत और कविवर प्रशान्त जी के माध्यम से व्यंग्य किया गया है जो अपने को युग-चेतना का आविष्कर्ता मानते हैं। फंफावत और प्रशान्त जी का शराब के दौर में बहकना और फंफावत द्वारा नशे की फोंक में मेज पर चढ़कर चिल्लाते हुए कविता पढ़ना- यह सब ऐसी हरकतें हैं जो साहित्यकारों में व्याप्त विकृतियों के प्रति पाठक का मन वितृष्णा से भर देती हैं।[1] इसी प्रकार फंफावत का विदेश जाने के लिए अनेक तिकड़म भिड़ाना व दूसरों की खुशामद करना साहित्यकारों का स्वाभिमानहीनता को चित्रित करते हैं।

इस उपन्यास में सबसे अधिक स्वाभाविक और अर्थपूर्ण चरित्र-चित्रण राज - नीतिज्ञों का हुआ है। मुख्यमंत्री त्यागमूर्ति से राधेश्याम और जबरसिंह की भेंट[2] वाला प्रसंग भारतीय नेताओं के चरित्र को पूरी तरह से उद्घाटित कर देता है। नेताओं की पदलोलुपता और ढोंग की क्षुद्र वृत्ति पर मुख्यमंत्री त्यागमूर्ति के माध्यम से वर्मा जी ने बड़ा तीखा व्यंग्य किया है। उनके नाम का इतिहास भी अत्यंत रोचक और व्यंग्यपूर्ण है। अपनी 81 वर्ष की अवस्था के उपरांत भी त्यागमूर्ति में कुर्सी के चिपके रहने की ऐसी लिप्सा है कि वह अपने मंत्रिमण्डल की सभी अनीतियों का साथ देते रहते हैं और जबरसिंह की एक ही धमकी से भयभीत होकर उनकी बात मान लेते हैं। जिन नेताओं ने स्वतंत्रता-संग्राम में गाँधी जी का हर तरह से साथ दिया उनकी ऐसी पदलोलुपता देश के लिए कितनी घातक और दुर्भाग्यपूर्ण है- इस सत्य की ओर वर्मा जी ने पाठक का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार जटाशंकर बाजपेयी का जीवन-चरित्र[3] प्रस्तुत करने का उद्देश्य भी राजनीतिज्ञों के चरित्र पर व्यंग्य करना ही है। कैबिनेट मीटिंग में राजनीतिक नेताओं में कैसी बचकानी बातें और बहसें होती हैं उसका सुन्दर चित्रण व्यंग्य-शैली में वर्मा जी ने किया है। जबरसिंह तो आधुनिक भारत के नेताओं का ज्वलंत उदा-हरण है आजकल के नेताओं के सभी गुण उनमें मौजूद है, अपनी सेवा-सुश्रुषा से राजनीति

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ0 168 से 169

2- वही- पृ0 150से154

3- वही- पृ0 179 से 181

में प्रविष्ट होना,[1] दुस्साहस और जबरई[2] भाषण देना,[3] सत्याग्रह और ढोंग[4] आदि बातें प्राय: सभी नेताओं में देखने को मिल जाती हैं। रामलोचन द्वारा व्यापारियों, गुण्डों और साम्प्रदायिक दंगे करनेवाले लोगों को पकड़ना, उनके डेलीगेशनों से जबरसिंह की बातचीत और उनसे स्वार्थसाधनों तथा जबरसिंह द्वारा रामलोचन को सलाह देने का प्रसंग[5] भी नेताओं के चरित्र पर करारा व्यंग्य करता है। जबरसिंह व्यापारी, शियासुन्नी और गुण्डों के प्रतिनिधियों से चंदा देने, वोट देने और अपना दासानुदास बन जाने का वचन लेकर उन्हें छोड़ देने का इंतजाम कर लेते हैं। जबरसिंह गुण्डों को भी देशभक्ति और ईमानदारी का उपदेश देने की सलाह रामलोचन को देते हैं। इस प्रकार इस प्रसंग द्वारा वर्मा जी ने नेताओं की दुनियादारी, चालाकी और तर्क-बुद्धि[6] पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है। ये नेता पूंजीपतियों के चाँदी के टुकड़ों पर किस प्रकार बिक गये हैं और देश की जनता को धोखा दे रहे हैं, इसका बड़ा यथार्थ चित्रण वर्मा जी ने किया है।

रामलोचन के प्रति थोड़ी सहानुभूति होने के कारण पुलिस की सभी बुराइयाँ उभरकर नहीं आई हैं, फिर भी उनका संकेत अवश्य मिल जाता है - पुलिसवालों की दोस्ती ही बदमाशों से होती है, ------- अगर पुलिस की अफसरी करनी है तो एक से एक छँटे बदमाश से मेल-जोल बढ़ाना पड़ेगा।'[7]

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' की उपर्युक्त कथा और महत्वपूर्ण प्रसंगों के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से वर्मा जी ने आधुनिक भारत

1- 'नेताओं की सेवा करना, उन्हें चाय पिलाना, पानी पिलाना, और समय-समय पर उनके आदेश सुनना।' - पृ० 83

2- 'मुकाबला तो हम यमराज का कर सकते हैं, आदमी की क्या बिसात।'

3- 'चारों तरफ जबरसिंह के धुँआधार व्याख्यान हो रहे थे।'

4- पिता द्वारा मारे जाने पर भी बालक जबरसिंह अपनी गलती पर माफी न माँगकर अपनी ही बात कहता रहता है, शरीर के लहू-लुहान हो जाने पर भी वह अपनी बात पर डटा रहता है।
डाकुओं के सामने सीना खोलकर खड़ा हो जाता है और उन्हें भी अपने भाषण से वश में कर लेता है। पृ० 80-81

5- सबहिं नचावत राम गोसाईं-पृ० 170 से 179

6- 'अपराधों के अनुपात से ही तो पुलिस फोर्स बढ़ाया जाता है। अब यह देखो कि साम्प्रदायिक दंगों की आशंका नहीं, स्मगलिंग कम होगी, ब्लैकमार्केटिंग बन्द-ला एण्ड आर्डर पोजीशन बिल्कुल ठीक। तो फिर तुम पुलिसवालों की जरूरत क्या है?' पृ० 178

7- पृ० 160

के राजनीतिज्ञों और पूँजीपतियों पर तीव्र प्रहार किया है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् देश की सम्पूर्ण राजनीति केवल स्वार्थसाधन की है उसमें जनता के हित-चिंतन का कोई स्थान नहीं। इस प्रकार भारत की समसामयिक स्थिति पर लिखे गये इस उपन्यास का हिन्दी उपन्यास-साहित्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। वर्मा जी की निर्भीकता के कारण इस उपन्यास में भारत की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उभरकर आ गई है किन्तु उपन्यास के अन्त में इस स्थिति के लिए 'रामगोसाईं को' दोषी ठहराने में भी वर्मा जी का व्यंग्य ही छिपा प्रतीत होता है। आज यह प्रवृत्ति प्राय: देखने में आती है कि हम अपने दुष्कृत्यों के लिए दूसरों को दोषी ठहरा देते हैं, विशेषतया भगवान को दोषी ठहराना तो एक दम सरल है क्योंकि ईश्वर हमारी बात का विरोध करने के लिए आनेवाला नहीं है। फिर भी इस उपन्यास के कठोर सत्य में रामगोसाईं को खींच लाने पर एक आलोचक ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है -'भगवतीबाबू भाग्यवादी हैं, बल्कि भाग्यवादियों में भाग्यवादी हैं। नियति सब कुछ कराती है, इंसान के किये धरे कुछ नहीं होता, वह किसी अदृश्य-शक्ति के हाथों कठपुतली की तरह नचाया जाता है। ----नियतिवादी होना है भगवतीबाबू की नियति है।'[1] ठीक ही है भगवतीबाबू को अपने प्रत्येक उपन्यास में नियतिवाद को जबरन आरोपित करने की अनावश्यक आदत पड़ गई है। तथापि यह उपन्यास अपनी मार्मिक व्यंग्यशैली और त्वरित गति के रोचक कथानक के कारण एक अत्यंत सशक्त कृति सिद्ध हुई है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

<u>प्रश्न और मरीचिका</u> :- यह उपन्यास मार्च 1973 में प्रकाशित हुआ। वर्मा जी का प्रस्तुत उपन्यास 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'भूले बिसरे चित्र' और 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास की श्रृंखला में लिखा गया एक अन्य उपन्यास है। इस उपन्यास में भी उपर्युक्त ग्रु उपन्यासों की भाँति भारत के विशाल चित्र फलक को प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक उपन्यास में वही म भारत देश है, वही भारतीय समाज है अपनी तमाम विकृतियों से भरा हुआ; विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ हैं और देश के राजतंत्र से सम्बंधित अनेक उच्चवर्ग के बुद्धिजीवी किस्म के लोग हैं। अंतर केवल यह है कि प्रत्येक उपन्यास में फोकस एक विशिष्ट समुदाय पर डाला गया है उसी समुदाय से जुड़कर अनेक दूसरे वर्ग भी चित्रित हो गये हैं। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में मुख्य आधार जमींदार वर्ग बना है, 'भूले बिसरे चित्र' में परतंत्र भारत की

1- 'प्रकाशन समाचार' सुरेन्द्र तिवारी-पृष्ठ-13

नौकरशाही को प्रमुखता दी गई है, `सीधीसच्ची बातें` में स्वतंत्रता संग्राम में संघर्षरत राजनीतिक नेता और पूँजीपति हैं। `सबहिं नचावत राम गोसाईं` इन उपन्यासों से क्वचित् भिन्न व्यंग्य-शैली में लिखा गया उपन्यास है। उसमें इन तीनों उपन्यासों के प्रमुख पात्रों (जमींदारों, पूँजीपतियों और राजनीतिक नेताओं को) को स्वतंत्र भारत में एक साथ लाकर उपस्थित कर दिया गया है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् एक नया वर्ग उपस्थित होता है अफसरों का, वह भी `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में आ जाता है। `सबहिं नचावत राम गोसाईं में इन तीनों उपन्यासों का सार जैसे एक साथ रख दिया गया है, इस उपन्यास का कथानक अधिकांशतः उत्तरप्रदेश के आस-पास घूमता रहता है। `प्रश्न और मरीचिका` में भारत के निकट अतीत को कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि हम आज अनुभव कर रहे हैं, भारत की सम्पूर्ण राजनीति दिल्ली में सिमट गई है क्योंकि केन्द्र तो वहीं है। इसी सत्य से प्रेरित होकर `प्रश्न और मरीचिका` उपन्यास का का केन्द्र दिल्ली ही है। इस उपन्यास में नेताओं और विधायकों का पक्ष प्रमुख रूप से उजागर हुआ है। देश०के०स्वतंत्रता देश स्वतंत्र हुआ, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त करने में गाँधी जी का साथ दिया था वे नेता शीर्षस्थ नेताओं की गुटबंदी के कारण पीछे रह गये। जो स्वतंत्र भारत के नायक की पूजा कर रहे थे, चुनावों की उठा-पटक में निव विजयी हो रहे थे - वह सत्ता प्राप्त करने लगे और दूसरी ओर देश के शासन तंत्र को चलाने वाले सचिवों की देश में क्या भूमिका है, इसी विस्तृत सूत्र से प्रस्तुत उपन्यास के सम्पूर्ण कथा-प्रवाह को आबद्ध किया गया है। `प्रश्न और मरीचिका` उपन्यास की कथा भारत विभाजन के कुछ दिनों पश्चात् से प्रारम्भ होती है।[1] उपन्यास का नायक जब स्वतंत्र भारत की राजधानी दिल्ली पहुँचता है तो वहाँ के वातावरण में दर्द और हर्ष का अजीब सम्मिश्रण पाता है। एक ओर स्वतंत्रता दिवस के हर्षोल्लास से भरे कार्यक्रम हैं तो दूसरी ओर हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों की दानवीयता से कराहता जन-समूह।

1- प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०
8, फैज बाजार, दिल्ली-6
मुद्रक : जी० आ० कम्पोजिंग एजेंसी
द्वारा- शहदरा प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-32

1- `सीधी सच्ची बातें` उपन्यास का अंत गाँधी जी के हत्या की घटना से ही होता है।

उपन्यास चार खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड की समाप्ति पर गाँधी जी की मृत्यु की सूचना मिल जाती है और उपन्यास के चौथे खण्ड की समाप्ति पर जवाहरलाल नेहरू की अस्वस्थता से होती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि दोनों नेताओं की मृत्यु के पीछे उनकी थकान, निराशा और असफलता के तत्व छिपे हैं। देश स्वतंत्र हुआ था, प्रत्येक भारतीय के मन में एक ही आकांक्षा थी कि देश गुलामी की जंजीरों से मुक्त होकर अपनी विशाल जनशक्ति और अगाध भौतिक सम्पत्ति का सदुपयोग करके एक शक्तिशाली राष्ट्र बन जायेगा किन्तु देश में फैली बेकारी, मँहगाई और भ्रष्टाचारिता जनता के समक्ष प्रश्न बनकर खड़ी हो गई हैं। इस स्वार्थी प्रवृत्ति और भ्रष्टाचारिता को देखते हुए भी जो लोग देश की प्रगति की आशा लगाए बैठे हैं वे मरीचिका के पीछे दौड़ रहे हैं यही उपन्यास का कथ्य है।

उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है और वर्मा जी की सूझबूझ की प्रशंसा करनी पड़ेगी कि उन्होंने आत्मकथा कहने के लिए एक ऐसे पत्रकार को चुना है जो भारत सरकार के प्रमुख सेक्रेटरी का पुत्र है और दूसरे सेक्रेटरी का दामाद है। देश की असली नेता तो यही सेक्रेटरी ही हैं। नीतियाँ इन्हीं के निर्देशन में बनती हैं, नेता तो विदेश-यात्रा करते हैं, भाषण देते हैं और चुनाव लड़ते हैं। इसीलिए विशेष परिस्थितियों के कारण अपना अध्ययन बम्बई में पिता से अलग रहकर, पूरा करके जब प्रभावशाली व्यक्तित्व का धनी नायक उदयराज पिता के पास पहुँचता है तो पिता के परिचित अनेक बड़े-बड़े लोग उसे सहर्ष गले से लगाने को तैयार हो जाते हैं। राजनीतिक नेता, पूँजीपति और भारत सरकार के सचिव अपने-अपने पेशे के अनुसार अपने साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं किन्तु अंततोगत्वा यही उचित समझा जाता है कि ऐसा होनहार युवक किसी भी नौकरी से न बँधकर राजनीति में आगे बढ़ने का प्रयत्न करे और मिनिस्टर बन जाये। उदयराज को भी इस फैसले से संतोष होता है कि वह शिवलोचन शर्मा जैसे नेता के साथ रहकर देश के निर्माण में सहयोग दे सकेगा। किन्तु थोड़ा-सा समय शर्मा जी का प्राइवेट सेक्रेटरी बनकर बिताने पर ही उदय को शर्मा जी की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। शर्मा जी की समस्त उदारता और भावनामयता उनका ढकोसला है। उदय को पता चल जाता है कि उसे अपना पी० ए० बनाने के पीछे शर्मा जी की अहंतुष्टि की प्रवृत्ति काम कर रही थी। भारत सरकार के सेक्रेटरी का प्रतिभाशाली पुत्र उनका पी० ए० था-इसका प्रदर्शन करने में उनकी मर्यादा की वृद्धि होती थी। शर्मा जी का पी० ए० और उनके घर का एक आत्मीय सदस्य बनकर उदय शर्मा जी के घर की पूरी स्थिति से परिचित हो

जाता है। शर्मा जी की पत्नी ~~xxxxxxx~~ रूपा शर्मा अपने पति के पद का पूरा लाभ उठाती हैं। मि० मंसुखानी से कार की भेंट स्वीकार कर लेने की घटना नेताओं की पत्नियों के लोभी स्वभाव का अंकन करती है। इसी प्रकार रूपा शर्मा का उदय के मित्र शिवकुमार के साथ होटल में रात बिताना, उदय के साथ शराब पीना और शिवकुमार के 50 हजार रु० चुरा लाना आदि घटनाएँ नेताओं के स्वयं के घर में चलनेवाली चरित्र-हीनता और पैसे के पीछे सभी अनैतिक साधनों को अपनाने की वृत्ति की ओर प्र इंगित कर देती हैं।

शर्मा जी के साथ उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रों के दौरे पर जाने के पहले ही उदय को दो मुसलमान महिलाओं को संकट से बचाने के लिए जाना पड़ता है वह उन्हें बचाकर शर्मा जी के घर ले आता है। आयशा बेगम और सुरैया दोनों माँ बेटी थीं और साम्प्रदायिक दँगों में फँस गई थीं। सुरैया और उदय में क्रमश: भय और करुणा व दया की भावना से प्रेरित होकर प्रेम हो जाता है और वह दोनों लवमैरिज करने के लिए कोर्ट में प्रार्थनापत्र भी दे देते हैं किन्तु मुसलमानों की कट्टरता के कारण उनका विवाह नहीं हो पाता। शेख मुस्तफा कामिल और मुहम्मद शफी के माध्यम से मुस्लिम लीगी और राष्ट्रवादी मुसलमानों की धारणाओं और समस्याओं का भी प्रासंगिक रूप से चित्रण हो गया है।

'साम्प्रदायिकता की घृणा' और 'जाति-पाँति वाली परम्परा की सड़ाँध की घुटन' से छुटकारा पाने के लिए उदय शर्मा जी और अपने पिता के संयुक्त प्रभाव से दिल्ली के मार्निंग स्टार के संवाददाता के रूप में अमेरिका चला जाता है। वहाँ प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को गाली देने पर एक अमरीकी पत्रकार को पीटने की घटना से उदयराज को पत्रकार के रूप में काफी प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है और इसके साथ-साथ वह प्रधान-मंत्री का पूर्ण कृपाभाजन बन जाता है। पत्रकार के रूप में प्रसिद्धि पा लेने के बाद उदयराज और अधिक लोकप्रिय हो जाता है। उसका विवाह उसके पिता के मित्र एक अन्य सेक्रेटरी विश्वनाथ मदान की पुत्री प्रमिला से हो जाता है। प्रमिला तो सौम्य और एक समर्पिता युवती है, किन्तु उसके परिवार के सम्पर्क में आने पर उदय को उच्च-वर्ग में व्याप्त अवैध प्रणय सम्बंधों का परिचय प्राप्त होता है जिसका वह स्वयं भी किसी हद तक शिकार बन चुका है। प्रमिला के भाई प्रेमनाथ मदान की ही भाँति पूँजीपति रामकुमार गाबड़िया

शिवकुमार गाबड़िया, राजनीतिक कार्यकत्री बिन्देसुरी देवी आदि कितने ही उच्चवर्गीय लोगों के अवैध यौन सम्बंधों का ज्ञान उसे हो चुका था ।उदय ने देखा- ये उच्चवर्गीय लोग अर्थ से बुरी तरह बँधे हैं, इनका सारा समय अर्थ, राजनीति और भोग-विलास में डूबा है। एक धनी और उच्च पदस्थ पिता का पुत्र और एक प्रसिद्ध पत्रकार होने के कारण उदय को पर्याप्त सम्मान हर स्थान पर मिलता है और उसके अनुभवों का भण्डार निरंतर समृद्ध होता जाता है । वह प्रधानमंत्री के साथ चीन की यात्रा करता है तथा भारत के अनेक नगरों की यात्रा एक संवाददाता की हैसियत से करता है, इससे भारत की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति पर विचार करने का पर्याप्त अवसर उसे प्राप्त होता है । एक तरह से कहा जा सकता है कि उदयराज उपाध्याय सीधीसच्ची बातें ` के जगतप्रकाश का ही एक अन्य रूप है । जगतप्रकाश में उच्चवर्गीय लोगों में रहते हुए जहाँ एक हीनता की भावना के दर्शन होते हैं वहीं उदयराज के स्वयं उच्चवर्ग से सम्बंधित होने के कारण आत्मविश्वास और निर्भीकता के गुण देखने को मिलते हैं । उच्चवर्ग के अन्य लोगों में जहाँ पद और धन-सम्पत्ति अर्जित करने के लिए एक पागलपन दृष्टिगोचर होता है वहीं उदयराज में इनके प्रति एक उदासीनता सी दिखती है, संभवत: इसीलिए कि उसे तो अपने पिता के कारण वह सब चीजें अनायास ही मिलती जाती हैं । एक ऊँचे अधिकारी की पुत्री से विवाह होने के कारण उसे अपनी पत्नी के नाम एक बड़ा बैंक बैलेन्स मिलता है, उसकी कोठी बन जाती है और पद की लोकप्रियता स तो उसे मिल ही चुकी है, इसीलिए इन सबसे निर्लिप्त रहकर उसमें उच्चवर्ग के विपरीत एक अन्य गुण परिलक्षित होता है दूसरों के प्रति सहानुभूति सदाशयता और दूसरों की सहायता करने का । इसीलिए सुदर्शन व्यक्तित्व के का धनी पैसे से मजबूत और परोपकारी उदयराज ऐसा है कि उसके सम्पर्क में आनेवाली प्रत्येक स्त्री उसके प्रति एक आकर्षण का अनुभव करती है चाहे वह केसरबाई हो या रूपा शर्मा, मंजील,सोफी गार्डनर, बिन्देसरी देवी और कांता में से कोई भी हो । युवतियाँ उसे लालसा भरी दृष्टि से देखती हैं और उदय से सम्बंध न हो पाने पर निराशा और विषाद का अनुभव करती हैं किन्तु उदय जैसे नेक और होनहार युवक के जीवन को शापग्रस्त न बना देने के बिचार से उसके मार्ग से अलग हट जाती हैं । रूपा शर्मा और केसरबाई उदयराज के सम्पर्क में आने पर स्वयं सुधरने का यत्न करने लगती हैं और वात्सल्य की भावना से प्रेरित होकर उसके जीवन को वासना की कालिमा से दूर रखने का निश्चय कर लेती हैं । इस प्रकार विभिन्न स्त्रियों के सम्पर्क में आने के कारण उदयराज को नारी-मनोविज्ञान का परिचय प्राप्त होता है ।

उदयराज जयराज उपाध्याय का इटालियन पत्नी से उत्पन्न पुत्र था । उसकी माता, पिता से पारस्परिक कलह के कारण उसे बचपन में ही छोड़कर चली गयी थीं, उसके बाद से वह बोर्डिंग हाउस में रहकर पढ़ा था, क्योंकि उसके पिता ने अपनी ब्राह्मण जाति में ही दूसरी शादी कर ली थी । अब पिता के साथ रहने पर अपनी शादी के समय उसका परिचय पिता के परिवार से होता है, तो उसे मध्यवर्गीय हिन्दू परिवारों में घुसे कलह, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता के बीच अपार ममता और आत्मीयता के दर्शन होते हैं । वह देखता है -"मारपीट, गाली-गलौज और इस सब के बीच असीम आत्मीयता से भरा हुआ यह हमारा समाज स्थित है ।"[1] इसी प्रकार शिवलोचन शर्मा के मित्र मुहम्मद शफी के साथ विचार-विमर्श करते हुए उसे भेदभाव पर आधारित हिन्दू धर्म और 'कम्यूनिज़्म के सबसे नजदीकी' इस्लाम धर्म के अंतर को जानने का अवसर मिलता है ।[2]

भारत के सामाजिक जीवन को देखने के साथ उदय को देश के राजनीतिक और आर्थिक जीवन का भी पर्याप्त अनुभव प्राप्त होता है । देश के राजनीतिक नेताओं को देश की प्रगति की चिंता नहीं है, उनका समस्त चरित्र सत्ता को हथियाने, सम्पत्ति अर्जित करने, भ्रष्टाचार और लोक दिखावे के तत्वों से समन्वित है । शिवलोचन शर्मा जैसा त्यागी और गाँधी जी का सच्चा अनुयायी नेता सत्ता के पीछे पागल होकर दौड़ता दिखता है । शासक-दल में सम्मिलित न हो पाने पर शर्मा जी कांग्रेस छोड़कर सोशलिस्ट पार्टी में आ जाते हैं वहाँ चुनाव हारने पर उनमें अथाह निराशा और कुण्ठा भर जाती है । उनकी पत्नी रूपा शर्मा सत्ता के लिए दूसरों के सामने घिघियाती हैं और दूसरों की खुशामद करती हैं । उनका कहना है -"त्याग की प्रवृत्ति आज की दुनिया में पागलपन से भरी आत्मघात की प्रवृत्ति भर रह गयी है । इस त्याग और ईमानदारी के बल पर राजनीति में कायम नहीं रहा जा सकता ।"[3] जन-जन में व्याप्त स्वार्थ, लोभ और छल-कपट को दूर कर देश को

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 251

2- 'सीधीसच्ची बातें' - उपन्यास में भी हिन्दू और इस्लाम धर्म पर विभिन्न दृष्टिकोणों से वर्मा जी ने जगतप्रकाश और जमील अहमद के वार्तालाप के माध्यम से विचार किया है ।

देखिए- सीधी सच्ची बातें- पृ० 178,259,260,678 आदि ।
प्रश्न और मरीचिका- पृ० 447-48

3- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 495

प्रगति के पथ पर ले जाने का उत्तरदायित्व देश ने जिस व्यक्ति को सौंपा था वह जवाहर लाल नेहरू स्वयं अहम् और बड़प्पन की मरीचिका में पड़कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सबसे महान व्यक्ति बनने के स्वप्न देखने लगे थे। उनका कहना था - कि देश में कोई ईमानदार आदमी दिखता ही नहीं उन्हें, बेईमान आदमियों के सहयोग से ही शासन चलाना है। लेकिन नेहरू जी यह भी मानते थे कि ये सब मानव विकृतियाँ अभावों के दूर हो जाने पर स्वयं दूर हो जायेंगी। इन अभावों को दूर करने के लिए देश का औद्योगीकरण हो रहा था। विदेशों से रुपया कर्ज के रूप में आ रहा था - देश के जितने बड़े पूँजीपति थे, सब के सब दिल्ली की तरफ दौड़ रहे थे - उनका नारा था-'देश को सम्पन्न तथा शक्तिशाली बनाने के पवित्र कार्यक्रम पर हमारा जीवन अर्पित है' किन्तु कथनी और करनी में कितना अंतर था। एक सरकारी अफसर, जो स्वयं रक्षा मंत्रालय के औद्योगिक कार्यक्रम से लाभ प्राप्त करना चाहते थे, देश के उद्योगपतियों की दशा बताते हुए कहते हैं -"देश के उद्योगपति ये सब के सब गद्दार हैं, शोषक है। उनका एकमात्र उद्देश्य है लम्बा मुनाफा। वह जनता का शोषण करते हैं ऊँची कीमतों से, मजदूरों का शोषण करते हैं। कम तनख्वाह देकर और सरकार का शोषण करते हैं टैक्स को न अदा करके।"[1] देश का प्रत्येक व्यक्ति बस धन प्राप्त करके बड़ा बनने का स्वप्न देख रहा है। देश के इसी चरित्र को व्यक्त करते हुए उदय की बहन लता के प्रेमी अंजनीकुमार ने अपने पत्र में लिखा था -"प्रत्येक व्यक्ति जो बड़ा बनना चाहता था वह अलग-अलग ढंग से अपराधी था चाहे वह मिनिस्टर हो, चाहे वह उद्योगपति हो, चाहे वह बड़ा अफसर हो। हरेक आदमी अपने ढंग से चोरी करता है डाका डालता है, धोखा देता है।"[2] उदय ने अपने विभिन्न परिचितों के चरित्रों से यही निष्कर्ष निकाला कि भारत अपनी भ्रांतियों से जकड़ा अभी भी अपना 'सोने की चिड़िया' नाम सार्थक करने का स्वप्न देख रहा है। अपनी सम्पन्नता प्रदर्शित करने के लिए भारत में विदेशी सम्राटों, राष्ट्रपतियों तथा प्रधानमंत्रियों के वैभव के प्रदर्शन भी फीके थे। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता में सम्पन्नता की चमक-दमक से विदेशियों की आँखें चकाचौंध हो जाती थीं। इसके पीछे मात्र प्रदर्शन की भावना थी। कारण यह था कि दुनिया के अविकसित एवं विकासशील देशों का नेतृत्व ग्रहण करके

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 454

2- वही- पृ० 516

भारत अमेरिका और रूस के समकक्ष दुनिया के तीसरे शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अपने को आरोपित कर सके। किन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। 'देश में व्यापक रूप से फैला भ्रष्टाचार, देश के नस-नस में समाई हुई चरित्र-हीनता और अनगिनत विकृतियों से भरी हुई देश की सामाजिक मान्यताएँ। और इनके अतिरिक्त भारतीय सेना के अफसरों की भीरूता और स्वार्थपरता के कारण भारत को चीन से पराजय की लज्जा भोगनी पड़ी। उदय को प्रमिला के चचेरे भाई अमरजीत से युद्ध के अनुभव सुनकर बड़ी ग्लानि का अनुभव हुआ था।

इसके अतिरिक्त उदयराज ने भारत जैसे प्रमुख लोकतंत्रीय देश में चुनावों के विकृत स्वरूप का भी बड़ा ही कटु अनुभव प्राप्त किया था। इन चुनावों में अपढ़ और अज्ञानी जनता और देश का प्रतिनिधित्व करनेवाले नेताओं की स्वार्थपरता को ही उसने परि - लक्षित किया था। अंततोगत्वा उदयराज एक अटूट निराशा और विषाद से भर उठता है और जब उसकी माँ मोरिया गियोवानी उसे अपने साथ विदेश ले जाना चाहती है तो वह अपना समाज और अपना देश छोड़कर जाने के लिए तैयार हो जाता है किन्तु उसे प्रमिला के अधिकार से बँधकर इसी देश में रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

'प्रश्न और मरीचिका' का उपर्युक्त कथानक देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास अनेक कथाओं के रहते हुए भी केवल कथा कहने के लिए नहीं लिखा गया है वरन् उसकी रचना सोद्देश्य हुई है। उपन्यास की रचना का मुख्य उद्देश्य स्वातंत्र्योत्तर भारत का चित्रण करना है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक कथा का निर्माण किया गया है और प्रासंगिक रूप में उसमें अनेक कथाएँ भी आ गई हैं। इस सोद्देश्यता के कारण वर्मा जी के मन में संदेह भी उठता है कि कहीं इस उपन्यास को भारत का पत्र इतिहास न समझ लिया जाय क्योंकि इसमें भारत की स्वतंत्रता के बाद की लगभग सभी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख मिल जाता है।[2] दूसरों द्वारा यह शंका उठायी जाये

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 527

2- देश को दो भागों में विभाजन, देश के औद्योगिक विकास के लिए अमरीका की भरपूर आर्थिक सहायता, भारत की रूस से मित्रता, गोआ की स्वतंत्रता, भारत से चीन का युद्ध और भारत की पराजय, भारत के पुनरुत्थान के लिए कामराज और कामराज योजना का आगमन आदि।

उसके पहले ही उसके निराकरण के लिए वर्मा जी अपने उपन्यास के नायक से कहलाते हैं – " मैं इतिहास नहीं लिख रहा हूँ मैं अपनी कहानी लिख रहा हूँ ।"[1] एक अन्य स्थान पर उपन्यास का नायक कहता है – "यह मेरे जीवन की कहानी इतनी नहीं जितनी उन लोगों की जो मेरे इर्द-गिर्द हैं या थे, जो मेरे जीवन में घनिष्ठ रूप से आए और जिन्होंने मेरे जीवन को प्रभावित किया और इसलिए कह सकता हूँ कि यह मानव-जीवन के उतार-चढ़ाव की कहानी है ।"[2] वास्तविकता यही है कि इस उपन्यास में ~~स्वयं~~ स्वतंत्र भारत (नेहरू जी की मृत्यु से पूर्व तक) के जन-जीवन का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने का यत्न किया गया है । यह बात दूसरी है कि उसमें प्रमुखतया देश के उच्चवर्ग की विकृतियाँ ही उभर पायी हैं । वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की भाँति 'प्रश्न और मरीचिका' में भी स्वच्छंद कामाशक्ति, मद्यपान और बौद्धिक वर्ग की विभिन्न विषयों की चर्चाएँ पाठक के समक्ष प्रश्न बनकर खड़ी हो जाती हैं । जिन लोगों ने वर्मा जी का केवल यही एक उपन्यास पढ़ा हो उन्हें यह उपन्यास निस्सन्देह आकर्षित कर सकता है क्योंकि 'किस्सागोई' की अपूर्व क्षमता वर्मा जी में है और इस क्षमता का सुन्दर परिचय इस उपन्यास में वर्मा जी ने दिया है । कथा का प्रवक्ता चूँकि आत्मकथात्मक शैली में कथा कहता है, इसलिए सम्पूर्ण कथानक उसके आस-पास घूमता रहता है इसलिए कथानक पर्याप्त सुगठित और स्वाभाविक बन पड़ा है । इसके अतिरिक्त उपन्यास के लगभग सभी कथा-प्रसंगों का नियोजन सुन्दर ढंग से हुआ है । किन्तु जो पाठक वर्मा जी के अन्य उपन्यास पढ़ चुके हैं उन्हें विषय की नवीनता का अभाव अवश्य खटकेगा । विशेषरूप से 'सीधी सच्ची बातें' और 'प्रश्न और मरीचिका' में पात्रों के वाद-विवाद के विषयों में पर्याप्त साम्य दिखता है । इसके अतिरिक्त 'सीधी-~~सच्ची~~ सच्ची बातें' के जमील अहमद की ही भाँति प्रस्तुत उपन्यास के नायक उदयराज की भेंट एक प्राध्यापक जनार्दनसिंह से हो जाती है जो उदय की समस्याओं को सुलझाने और अनेक बातों पर विचार-विमर्श करने का अच्छा माध्यम बन जाता है । उपन्यास के आदि और अंत के कुछ पृष्ठों को छोड़कर जनार्दनसिंह के व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष-परोक्ष उपस्थिति उदय के समीप दिखती है। 'सीधी सच्ची बातें' के जगतप्रकाश की ही भाँति प्रस्तुत उपन्यास का नायक उदयराज भी

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 468

2- वही- पृ० 537

P|Th 3364

अपनी अनेक कमियों के उपरांत सबके आदर और प्रेम का पात्र बना रहता है। यहाँ तक कि उसे 'देवता' की उपाधि से भी विभूषित कर दिया जाता है।[1]

वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की भाँति प्रस्तुत उपन्यास में भी 'नियतिवाद' और 'गीता दर्शन' का समावेश दृष्टिगोचर होता है। किन्तु वयोवृद्ध जयराज उपाध्याय के मुख से 'विधि के विधान' और 'मनुष्य की अवशता' की बात अस्वाभाविक नहीं लगती। विशेषरूप से उस समय जब हम पढ़ते हैं कि जयराज उपाध्याय गीता पढ़ रहे थे। उसी समय अपनी पुत्री के निर्मोही प्रेमी की मृत्यु का समाचार पाकर ईश्वर की परोक्ष सत्ता का अनुभव कर उठना सहज और स्वाभाविक प्रतीत होता है। 'प्रश्न और मरीचिका' के विभिन्न संदर्भों में वर्मा जी के चिंतन के प्रिय विषय प्रेम, वर्णाश्रम व्यवस्था, पूँजीवाद, हिन्दू धर्म की मान्यताएँ(हिम समाधि, जल समाधि, अग्निसमाधि, इत्यादि) आदि पर पात्रों की चर्चा दृष्टिगत होती है। फिल्मी जीवन की भी थोड़ी झाँकी इस उपन्यास में देखने को मिल जाती है। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि भगवतीबाबू ने अपने विभिन्न उपन्यासों से कुछ पात्र और समस्याएँ लेकर एक नया उपन्यास लिख डाला है, जिसमें उनकी अनास्था की भावना दृढ़तर होकर प्रकट हो गई है।

अन्य उपन्यासों से अलग उपन्यास में एक बात जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह है वृद्धावस्था का सुन्दर चित्रण। अभी तक वर्मा जी ने अधिकतर अपने प्रमुख पात्रों की युवावस्था का विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रण किया है। इस उपन्यास में एक होटल के मालिक मेलाराम और जयराज उपाध्याय के द्वारा वृद्धावस्था से न गुजर रहे दो व्यक्तियों का सुन्दर चित्रण किया गया है। एक ओर मेलाराम हैं, जिनमें अपने स्वार्थी पुत्र के कारण वृद्धावस्था की उदासीनता और निराशा भर गयी है, अपने पुत्र द्वारा अवहेलना की ग्लानि उन्हें भुगतनी पड़ती है और वह इसी क्रोध में अपने पुत्र को अपनी व्यक्तिगत पूँजी से वंचित रखना चाहते हैं किन्तु पुत्र को देखते ही उनका दिल पसीज उठता है और वह पुत्र के मोह से अभिभूत हो जाते हैं। दूसरी ओर जयराज उपाध्याय हैं जिन्होंने अपनी वृद्धावस्था के सहज क्रम को बिना किसी हिचकिचाहट के अपना लिया है। अपना अधिकांश समय वह आध्यात्मिक चिंतन में व्यतीत करते हैं, पुत्री लता के जीवन का दुख भी उनके जीवन को विषाक्त नहीं बना पाता है। अपने बच्चों

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 229,485,489

को पर्याप्त स्वच्छंदता और सुविधाएँ देकर उन्होंने अपने वात्सल्य भाव को गरिमा से मंण्डित कर लिया है ।

सम्पूर्ण उपन्यास में जहाँ भारतीय जनजीवन में व्याप्त विविध विकृतियों से उत्पन्न निराशा की स्थिति को भगवतीबाबू ने चित्रित किया है वहीं उपन्यास के अंत में आशा की एक झलक भी दिख जाती है जहाँ उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र देश के उत्थान की संभावना व्यक्त करता है -"तुम जिस गन्दगी में रह रही हो उसके मुकाबले में यहाँ की गन्दगी कुछ भी नहीं है । यहाँ कुछ भी ऐसा नहीं है जो वहाँ तुम्हारे यहाँ न हो । और यह राजनीतिक चरित्रहीनता, यह भ्रष्टाचार, यह तो हम लोगों को तुम विदेसियों से ही विरासत के रूप में मिले हैं । हम लोग इसके ऊपर उठेंगे, हम उठने भी लगे हैं । लेकिन-लेकिन तुम्हारी यह सभ्यता और संस्कृति । यह तो नितान्त अमानवीय है, जहाँ न दया है, न प्रेम है, न भावना है ।"[1] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि देश की उपर्युक्त पतितावस्था के लिए वर्मा जी विदेशी शासन को ही उत्तरदायी मानते हैं । विदेशी शासन की परतंत्रता में जकड़ी भारतीय जनता की मानसिक परतंत्रता और लज्जन्य दूषित अवस्था तथ्यपरक ही प्रतीत होती है ।

'प्रश्न और मरीचिका' के सामान्य विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि वर्मा जी का प्रस्तुत उपन्यास अपनी सोद्देश्यता और घिसी-पिटी समस्याओं के घिसे-पिटे विश्लेषण और समाधान के कारण उपन्यास की सुन्दरता कुछ कम अवश्य हो जाती है तथापि सम-सामयिक विषय भारतीय जन-जीवन को प्रस्तुत करने के कारण और वयोवृद्ध उपन्यासकार के उपन्यास लेखन के विस्तृत अनुभव के कारण उपन्यास हिन्दी साहित्य में अपना स्थान निस्सन्देह बना सकेगा ।

प्रस्तुत अध्याय में वर्मा जी के अद्यावधि लिखे गये सभी उपन्यासों का विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया गया है । उनके सम्पूर्ण उपन्यास-साहित्य का के विषयगत अनुशीलन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उनके उपन्यासों में पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगत होता है । उनके उपन्यास-लेखन का मुख्य उद्देश्य मानव-समाज के विविध रूपों का चित्रण करना ही है । अपने लेखनकाल के 45 वर्षों में भगवतीबाबू ने जो भी

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 552

उपन्यास लिखा उसमें तत्कालीन अथवा उससे कुछ पूर्व के समाज का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है। उनके उपन्यासों का क्षेत्र अधिकांशत: उच्च मध्यवर्ग तक ही सीमित रहा है। 'थके पाँव' ही एक मात्र अपवाद है जिसमें निम्नमध्यवर्ग का चित्रण किया है। 'भूले बिसरे चित्र', 'आखिरी दाँव', 'तीन वर्ष', 'सीधी सच्ची बातें' आदि कुछ उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का प्रारंभिक जीवन यद्यपि निम्न मध्य वर्ग से सम्बंधित है तथापि विभिन्न कारणों से ये पात्र उच्चमध्यवर्ग अथवा उच्च वर्ग से ऐसे जुड़ जाते हैं कि वह उसी वर्ग के सदस्य प्रतीत होने लगते हैं और इस प्रकार उनके उपन्यासों में उच्च मध्यवर्ग को ही महत्ता प्राप्त हो सकी है।

वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास सामाजिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गये हैं। सामाजिक जीवन से प्रभावित व्यक्ति का संघर्ष और उसका अहं उनके उपन्यासों में उभरकर आया है; अत: हम कह सकते हैं कि उनके उपन्यासों में व्यक्ति और समाज का सम्बंध अन्योन्याश्रित है। 'पतन', 'तीन वर्ष', 'भूले बिसरे चित्र', 'आखिरी दांव' और 'थके पाँव' ऐसे उपन्यास हैं जिनमें व्यक्ति और समाज से सम्बंधित अनेक प्रश्नों को उठाया गया है और उनका समाधान भी अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। उपर्युक्त उपन्यासों को सामाजिक उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। इनके विपरीत 'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और सीमा' और 'रेखा' में पाप-पुण्य, मानव की सामर्थ्य और सीमा तथा काम विकृति की कुछ विशिष्ट समस्याएँ इतनी अधिक मुखर हो उठी हैं कि इन उपन्यासों को ऐतिहासिक अथवा सामाजिक उपन्यास कहना उचित प्रतीत नहीं होता; इसलिए इन उपन्यासों को हम समस्यामूलक उपन्यास कह सकते हैं। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते, 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश इतना प्रबल और सजीव है कि इन्हें राजनीतिक उपन्यास कहना ही उचित है। 'अपने खिलौने' व्यंग्य शैली में लिखा गया उपन्यास है जिसमें समाज के विशिष्ट वर्ग और व्यक्तियों को लक्ष्य बनाया गया है। 'अपने खिलौने' की तरह 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' भी व्यंग्य शैली में ही लिखा गया है। 'अपने खिलौने' में जहाँ व्यंग्य हास्य और व्यक्तिगत प्रहार से युक्त है वहाँ 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' उपन्यास में व्यंग्य अत्यंत सचोट और मार्मिक है तथा उसमें सम्पूर्ण समाज की विकृतियों पर परोक्ष रूप से प्रहार किया गया है। 'प्रश्न और मरीचिका' तथा 'वह फिर नहीं आई' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' में एक

व्यक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण समाज का दर्शन किया गया है जबकि 'वह फिर नहीं आई' में आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति दिखती है। विषय और शैली को दृष्टि में रखकर वर्मा जी के सभी उपन्यासों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है तथापि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों में संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति और अर्थ इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि उनका विभिन्न श्रेणियों में विभाजन अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होता है। प्रेम, सेक्स, नियति और व्यवस्था के प्रति विद्रोह कुछ ऐसे विषय हैं जिनकी उपस्थित वर्मा जी के प्राय: सभी उपन्यासों में किसी न किसी रूप में मिल जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी का उपन्यास-साहित्य यद्यपि विविधताओं से मंडित है तथापि उसकी अन्तर्वर्ती धारा एक है। वर्मा जी सामाजिक उपन्यासकार हैं और उनके उपन्यासों में बुद्धि तत्व का प्राबल्य होने के कारण विचार और दर्शन का अधिक अवकाश रहा है। वर्मा जी के उपन्यास अपनी कथात्मकता के लिए भी प्रसिद्ध हैं अतएव इन उपन्यासों की कहानी दर्शन और विचारों की गुफाओं में विलुप्त नहीं हो गयी है वरन् दोनों का समभाव इन उपन्यासों में बराबर बना रहा है। विचार जहाँ उपन्यास को गरिमा मंडित करते हैं कहानी वहीं उन्हें गुदगुदाने का कार्य करती है। वर्मा जी ने इन तत्वों में संतुलन बनाए रखा है यही उनकी सफलता है।